प्रकाशक—

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

(श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)

२४ रामतीर्थ नगर, लखनऊ

मुद्रक—

पं० शिवशङ्कर भार्गव

फाइन प्रेस

१८ हीवट रोड, लखनऊ

पाँचवाँ भाग

धर्म-तत्त्व

विषय-सूची

पाँचवाँ भाग

धर्म-तत्त्व

और बुद्धि बाह्य जगत से पीछे लौटकर इस अज्ञात-अचिन्त्य मूल स्रोत में लय हो जाता है।

जब कोई ईसाई भक्त या पवित्र-हृदय मुसलमान ईश्वर की प्रार्थना के लिए तैयार होता है तब उसके हाथ अपने आप अज्ञात रूप से ही ऊपर उठ जाते हैं मानों वह किसी ऊपर के, अपने से बाहर के, अज्ञात तत्त्व को पकड़ने की चेष्टा कर रहा हो। हिन्दू जब भक्ति में लीन होता है अथवा समाधि में बैठता है तब अपने आप प्रकृतवश उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वह अनन्त, अज्ञात तत्त्व हमारे भीतर है, जिसमें हमारा मन और बुद्धि डूबना चाहती है।

धर्म अनेक नहीं, एक है; वही हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत की जान है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस धर्म का एक अर्थ है उस अज्ञात का, मन-वाणी से अगोचर का साक्षात्कार, जहाँ न जाति-पाँति रहती है और न रंग-रूप, जहाँ न मत-मतान्तर रहते हैं न सिद्धान्त और वर्णसिद्धान्त, न मन-वाणी, न देश-काल और न कार्य-कारण, न इहलोक रहता है और न कोई अन्य काल्पनिक परलोक, जहाँ ये सारी बातें और उनके अन्तर्गत जो कुछ सम्भव हो सकता है वह सब कुछ साफ हो जाता है, सब कुछ उसमें लीन हो जाता है जहाँ शब्द की पहुँच नहीं हो सकती उसका साक्षात्कार ही धर्म है। क्या इसमें कोई रहस्य है? नहीं, बिल्कुल नहीं।

जिस मनुष्य ने सचमुच कभी धार्मिक अनुभव प्राप्त किया हो वह अपने उस क्षण की याद करे जिसे समाधि की अवस्था कहते हैं और फिर बतावे कि उस घड़ी में अपने-पराये की, संसार की यहाँ तक कि ईश्वर की भी याद रहती है या नहीं। यथार्थ साक्षात्कार की अवस्था में मैं और तू का प्रपंच, द्रष्टा और दृश्य का भेद काफूर हो जाता है। उपर्युक्त आदर्श को प्राप्त कराने वाले किसी भी वैधानिक प्रयत्न को राम धार्मिक समझता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसे रहस्यमय लक्ष्य को प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने के पहले आइये, हम इस बात की जाँच करें कि मनुष्य के हृदय को आकर्षित करने वाले कुछ आदर्शों की जैसे ज्ञान, वीरता, प्रेम, सुख आदि की प्राप्ति साधारणतः हमें कैसे होती है।

१—साधारणतः हम ज्ञान से उन बातों या तथ्यों का अर्थ लगाते हैं, जो हमें बाह्य उपकरणों जैसे पुस्तकों या शिक्षकों के द्वारा प्राप्त होते हैं। और उस मनुष्य को हम बड़ा विद्वान समझते हैं जिसने अपने समय के सुप्रसिद्ध एवं विद्वतापूर्ण ग्रन्थों से अपने मस्तिष्क को भर लिया हो अथवा उन्हें कंठाग्र किया हो। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं कि हमें भूतकाल की सफलताओं की अवहेलना न करना चाहिए, परन्तु सावधानी से उनका अध्ययन करना चाहिए किन्तु हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि वास्तविक शिक्षा तो उस समय प्रारम्भ होती है, जब मनुष्य सभी प्रकार की बाह्य सहायताओं से मुँह मोड़कर अपने अन्तर के अनन्त स्रोत की ओर अग्रसर होता है। बस, ऐसी दशा में एक से एक नये विचार उसके हृदय से निकलते हैं, वह मानो मौलिक विज्ञान का प्राकृतिक झरना बन जाता है। न्यूटन तथा अन्य सत्यान्वेषियों ने अनेक लाभदायक आविष्कारों का सम्पादन किया है। आप यह बतलाइये कि ये सत्यादर्श जो उनके पहले मनुष्य को प्राप्त न थीं उनको किन पुस्तकों से प्राप्त हुई थीं? इन बातों को उन्होंने कहाँ से, किस गुरु से सीखा था? सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य-जाति के उन उद्धारक महापुरुषों की शिक्षा या जिज्ञासा अज्ञात रूप में हो जाती है। जब वे उस वास्तविक आत्मा तक पहुँच गये, केवल जिसके द्वारा ही समस्त अनसुना सुना जाता है, न जाना हुआ जाना जाता है, न सोचा हुआ सोचा जाता है। उसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने आप एक निष्कलंक है जिसका स्वतः प्रकाश होता है। प्रकाश होने का अर्थ है कि वह अपने क्षुद्र अहंकार (अहम्) को भूल जाता है, उसमें अपने तन-मन-बुद्धि

का प्रत्येक सैनिक प्राण-पुकार कर उठता है कि इस समय का धर्म वरन् आत्मा के द्वारा हुआ है जो शक्तिमान और सबका संसार के तल से श्रेय विद्यमान रहता है। देखने वाले उसके दुर्जय साहस और असीम वीरता को देखकर दंग हैं, जो न जाने कहाँ से उसके द्वारा प्रकट होकर उनकी आँखों को बिजली के समान चकाचौंध कर रही है, किन्तु यदि योद्धा से स्वयं उसकी वीरता का पता पूछा जाय तो उसका यह दुर्धर्ष शौर्य उससे उसी प्रकार अज्ञात होगा, जैसे समाधि में, धर्म के वास्तविक स्वरूप में, पर्दे के पीछे रहने वाली सर्वात्मा में सब कुछ विलीन रहता है।

३—प्रेम का शब्द कितना प्यारा है! प्रेमी से सभी प्रेम करते हैं, कौन भला सच्चे भक्त की भक्ति नहीं करता! सच्चे हिन्दू को अधिकांश अवसरों पर भक्ति का ही एकमात्र सहारा रहता है। कुछ ऐसी श्रेष्ठ आत्मायें होती हैं, जो ईश्वर की भक्ति के लिए, भगवान की सेवा के लिए अपना सब कुछ अपना सर्वस्व सहर्ष बलिदान करने के लिए तत्पर रहती हैं। आइये, हम इस भक्ति के मूल के स्रोत की शोध लगायें।

चैतन्य महाप्रभु या 'धनयन' जैसे आदर्श भक्तों की ख्याति इसी लिए हुई कि प्रार्थना के समय वे असाधारण रूप से समाधिस्थ या आत्मविह्वल हो जाते थे। और यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जिस हृदय में ईश्वर-भक्ति इतने जोर से उमड़ती है उसके लिए लोक-लज्जा अथवा सांसारिकता का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। वह अपने क्षुद्र अहम् के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। किन्तु ऐसे दिव्य पुरुषों की बात छोड़ दीजिये उन पुरुषों को देखिये, जिन्हें सांसारिक पदार्थों से ही सच्चा प्रेम करने का सुअवसर मिला है, वे भी अपने अनुभव से बतला सकते हैं कि प्रेम की परमावधि में न प्रेमी रहता है और न प्रेमिका। निस्सन्देह यह विचित्रता है किन्तु होता ऐसा ही है। तात्पर्य यह कि प्रेम भी उपर्युक्त धर्म के स्वरूप से एकरूप है—इस से इन्कार नहीं किया जा सकता।

एक सुन्दर कहानी है जिसमे प्रोमेथियस ने स्वर्ग से अग्नि चुराने की चेष्टा करके अनेक यातनायें सही थीं'।

अब प्रश्न यह है कि क्या इस परम कल्याणमय दरबार में नियमित द्वार से प्रवेश पाना संभव नहीं है ? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिसके द्वारा अर्द्धनिशा की विद्युत झलक को अनादिकालीन दिवाप्रकाश में परिणत किया जा सके। हमारे हृदयों में अपने आप ऐसी इच्छा विद्यमान रहती है और इसीलिए साधारणतः हमारे लिए धर्म की आवश्यकता होती है। जो इस उद्देश की प्राप्ति के लिए कठिन प्रयास करते हैं वे निस्सन्देह प्रशंसनीय हैं और जो धर्म की इस महत्ता का तिरस्कार करते हैं, वे मानो जानबूझ कर अपनी इच्छा के विरुद्ध आत्मघात में लगे हुए हैं।

दर्शनशास्त्र अथवा विज्ञान ने इस अनिर्वचनीय तत्व का रहस्य जानने के लिए जितने अधिक प्रयास किये हैं, वे सब बुरी तरह असफल हुए हैं। देश-काल और कार्यकारण-संबंध—इन पर चाहे द्रष्टा और दृश्य के दृष्टिकोण से विचार किया जाय, उनका वास्तविक स्वरूप समझने में नहीं आता। पदार्थ, गति या शक्ति का अन्तिम स्वरूप खोजते समय अन्वेषक-मस्तिष्क के सामने ऐसी घोर बाधायें उपस्थित होती हैं, जिन को पार करना असम्भव हो जाता है। 'एटोमिक थियरी' अणुमन्तव्य में स्वयं विरोध उत्पन्न होता है। यही हाल अन्त में वैज्ञानिक बोस्कोविच के 'गतिकेन्द्र' मन्तव्य का हुआ। संसार के जितने भी प्रमाणाधारित धर्म विज्ञान प्रचलित हैं उन सब पर किसी न किसी अंश में विचारहीनता की छाप लगी हुई है। एक दर्शनशास्त्र दूसरे दर्शन का खण्डन और निन्दा करता है। दूसरा उसी रूप से बदला लेने में कोई बात उठा नहीं रखता। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति का अन्तरंग बुद्धि के लिए सदैव रहस्यपूर्ण ही रहेगा। दूसरे शब्दों में समष्टि की गहराई का पता लगाना मानवी बुद्धि से परे की बात है। तो क्या ऐसी

एक सुन्दर कहानी है जिसमें प्रोमेथियस ने स्वर्ग से अग्नि चुराने की चेष्टा करके अनेक यातनायें सही थीं'।

अब प्रश्न यह है कि क्या इस परम कल्याणमय दरबार में नियमित द्वार से प्रवेश पाना संभव नहीं है ? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिसके द्वारा अर्द्धनिशा की विद्युत झलक को अनादिकालीन दिवाप्रकाश में परिणत किया जा सके। हमारे हृदयों में अपने आप ऐसी इच्छा विद्यमान रहती है और इसीलिए साधारणतः हमारे लिए धर्म की आवश्यकता होती है। जो इस उद्देश की प्राप्ति के लिए कठिन प्रयास करते हैं वे निस्संदेह प्रशंसनीय हैं और जो धर्म की इस महत्ता का तिरस्कार करते हैं, वे मानो जानबूझ कर अपनी इच्छा के विरुद्ध आत्मघात में लगे हुए हैं।

दर्शनशास्त्र अथवा विज्ञान ने इस अनिर्वचनीय तत्व का रहस्य जानने के लिए जितने अधिक प्रयास किये हैं, वे सब बुरी तरह असफल हुए हैं। देश-काल और कार्यकारण-संबंध—इन पर चाहे द्रष्टा और दृश्य के दृष्टिकोण से विचार किया जाय, उनका वास्तविक स्वरूप समझने में नहीं आता। पदार्थ, गति या शक्ति का अन्तिम स्वरूप खोजते समय अन्वेषक-मस्तिष्क के सामने ऐसी घोर बाधायें उपस्थित होती हैं, जिन को पार करना असम्भव हो जाता है। 'एटोमिक थियरी' अणुसिद्धान्त में स्वयं विरोध उत्पन्न होता है। यही हाल अन्त में वैज्ञानिक बोस्कोविच के 'गति-केन्द्र' सिद्धान्त का हुआ। संसार के जितने भी आध्यात्मिक धर्म विधान प्रचलित हैं उन सब पर किसी न किसी अंश में विचारहीनता की छाप लगी हुई है। एक दर्शनशास्त्र दूसरे दर्शन का खण्डन और निन्दा करता है। दूसरा उसी रूप में बदला लेने में कोई बात उठा नहीं रखता। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति का रहस्य बुद्धि के लिए सदैव रहस्यपूर्ण ही रहेगा। दूसरे शब्दों में सृष्टि की गहराई का पता लगाना मानवी बुद्धि से परे की बात है। तो क्या हम

स्थिति में समष्टि के आधारभूत उस निरपेक्ष तत्त्व की खोज करने से हमें सर्वथा निराश हो जाना चाहिए ? क्या हमको अपना मन और सारी शक्ति व्यावहारिक चीजों, जैसे रेलतार अथवा विनाशक बारूद और बमों की शोध और आविष्कार में ही लगाना चाहिए। किन्तु इन खिलौनों से भी तो पूरा नहीं पड़ता, इनसे शान्ति नहीं मिलती। हर एक नई वस्तु प्राप्त होने पर और और नई वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हमारे हृदय में जो अनिवार्य लालसा जाग्रत् होती है, मानो वह जोरदार शब्दों में सांसारिक आकांक्षाओं की तुच्छता हमारे सामने प्रकट करती है।

इन विचारों से हम घोर निराशा में पड़ जाते हैं। किन्तु उपनिषद् कहते हैं—निराश मत हो। शान्ति के लिए तुम्हारे हृदय की अन्ततम आशा कभी व्यर्थ न जायगी। इस सत्य तत्त्व के विरुद्ध हम अपनी आँखें चाहे जितने हठ से बन्द रखें एकान्त के कुछ सुखद क्षणों में ऐसे प्रश्न बरबस हमारे सामने आ जाते हैं जैसे, आखिर, संसार का यह सारा पसारा कहाँ से प्रकट हुआ है ? मैं कौन हूँ, अथवा मैं हुआ ही क्यों ? इस विशाल पृथ्वी और अनन्त आकाश का प्रयोजन क्या है ?

वेद कहते हैं कि हमारे हृदय में बद्धमूल इस प्रश्न का कोई न कोई समाधान अवश्यमेव निकलना चाहिए, यद्यपि दर्शन, विज्ञान अथवा सांसारिक प्रेम से यह कार्य नहीं हो सकता। यह प्रश्न वास्तव में स्वयं उसी अनिर्वचनीय माया का अंश है जिसे वह हल करना चाहता है। जैसे कोई बाज़ उस आकाशमण्डल को पार नहीं कर सकता, जिसके भीतर वह उड़ता है, उसी प्रकार हमारी विचारशक्ति अपनी सीमा के क्षेत्र को पार नहीं कर सकती। जब तक प्रश्न-कर्त्ता और जिनके बारे में प्रश्न किया जाता है वे—ऐसा द्वन्द्व रहेगा, तब तक माया के कारागार की दीवारें नहीं टूट सकतीं और न हम दृश्य-पदार्थ से ऊपर उठ सकते हैं। हमारा यह आदर्श एक विशेष साधना से प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु जब उसकी प्राप्ति हो जाती है तब वहाँ न प्रश्न का नामोनिशा

स्थिति में सृष्टि के आधारभूत इस निरपेक्ष तत्व की खोज करने से हमें सर्वथा निराश हो जाना चाहिए ? क्या हमको अपना सारा बल और सारी शक्ति व्यावहारिक चीजों, जैसे रेलतार अथवा विनाशक बारूद और बमों की शोध और आविष्कार में ही लगाना चाहिए। किन्तु इन खिलौनों से भी तो पूरा नहीं पड़ता, उनसे शान्ति नहीं मिलती। हर एक नई वस्तु प्राप्त होने पर और और नई वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हमारे हृदय में जो अनिवार्य लालसा जाग्रत् होती है, मानों वह जोरदार शब्दों में सांसारिक आकांक्षाओं की तुच्छता हमारे सामने प्रकट करती है।

इन विचारों से हम घोर निराशा में पड़ जाते हैं। किन्तु उपनिषद् कहते हैं—निराश मत हो। शान्ति के लिए तुम्हारे हृदय की अन्तर्तम आशा कभी व्यर्थ न जायगी। इस सत्य तत्व के विरुद्ध हम अपनी आँखें चाहे जितने हठ से बन्द रखें, एकान्त के कुछ सुखद क्षणों में ऐसे प्रश्न बरबस हमारे सामने आ जाते हैं जैसे, आखिर, संसार का यह सारा पसारा कहाँ से प्रकट हुआ है ? मैं कौन हूँ, अथवा मैं हुआ ही क्यों ? इस विशाल पृथ्वी और अनन्त आकाश का प्रयोजन क्या है ?

वेद कहते हैं कि हमारे हृदय में बद्धमूल इस प्रश्न का कोई न कोई समाधान अवश्यमेव निकलना चाहिए, यद्यपि दर्शन, विज्ञान अथवा सांसारिक प्रेम से यह कार्य नहीं हो सकता। यह प्रश्न वास्तव में स्वयं उसी अनिर्वचनीय माया का अंश है जिसे वह हल करना चाहता है। जैसे कोई बालक उस आकाशमंडल को पार नहीं कर सकता, जिसके भीतर वह रहता है, उसी प्रकार हमारी विचारशक्ति अपनी सीमा के क्षेत्र को पार नहीं कर सकती। जब तक प्रश्न-कर्त्ता और जिनके बारे में प्रश्न किया जाता है वे—ऐसा द्वन्द्व रहेगा, तब तक माया के कारागार की दीवारें नहीं टूट सकतीं और न हम दृश्य-पदार्थ से ऊपर उठ सकते। हमारा यह आदर्श एक विशेष साधना से प्राप्त किया जा सकता किन्तु जब उसकी प्राप्ति हो जाती है तब वहाँ न प्रश्न का नामोनिशाँ

जाता है और न उत्तर था। इसी आदर्श को प्राप्त करना वेदान्त का लक्ष्य है किन्तु सांसारिक प्रेम, सुख, आमोद-प्रमोद—ऐसी बातों से इसका कोई संबंध नहीं होता, क्योंकि इनका तरीका गुलामी बढ़ाने वाला है। जिसकी ऐसी अद्वैत दृष्टि हो जाती है, वह स्वयं ब्रह्म है, जो मन और बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। जो मनुष्य इस ब्रह्म के दर्शन भर कर लेता है, वह भय और चिन्ता से मुक्त हो जाता है। जिसे ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है अथवा जिसे धर्म की प्राप्ति होती है, उसका चरित्र ऐसा निर्मल हो जाना चाहिए जो किसी प्रकार हिलाया नहीं जा सकता।

इसीलिए 'धर्म' इस रूप के लिए अपेक्षित है।

ॐ ॐ ॐ

छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति और विश्वव्यापी प्रेम

भारतवासियों के लिए, संसार के लिए राम का संदेश।

जब कभी भारतवर्ष में कोई होनहार आन्दोलन उठाया जाता है तभी दलबन्दी का भाव सर्वसाधारण का ध्यान नेता के चरित्र सम्बन्धी दोषों की ओर खींचने लगता है। इस प्रकार प्रत्येक फूल खिलने के पहले ही कलिका रूप में मुरझा जाता है। त्रुटियाँ किस में नहीं हैं? स्वामी विवेकानन्द की स्वास्थ्यकर एवं आशाजनक योजनाओं तथा निर्भीक उपदेशों का तिरस्कार इसलिए किया जाता है कि स्वामीजी यह खाते-पीते हैं, वह खाते-पीते हैं। यही हाल काशी के स्वामी कृष्णानन्दजी का हुआ। एक आपत्ति-जनक व्यवहार सर्वसाधारण के सामने उनके मत्थे मढ़ा गया, जो वास्तव में उनका था भी नहीं और उनका जुबान बन्द कर दी गई। इसी प्रकार जो व्यक्ति साधारण धर्म-प्रचार और धर्म महोत्सव के कामों में अगुआ हुआ है, उस पर भी कतिपय व्यक्तिगत त्रुटियों का आरोप करके साधारण धर्म-प्रचार और धर्म-महोत्सव के अधिवेशनों से लोगों को विरत किया जा रहा है। गधे से गिर पड़ने पर गधे के हाँकनेवाले से झगड़ना, निस्सन्देह विलक्षण तर्क है।

एक बार राम ने देखा—एक दूध बेचनेवाला छोकरा एक घर में दूध कुछ बोतलें लिये जा रहा है। संयोग से एक बोतल उसके हाथ फिसल कर टूट गई।

वह क्रोध से ऐसा भड़का और शेष बोतलें भी उसने सड़क पर पटक दीं।

अपने परस्पर के बर्ताव में भी लोग ठीक ऐसा ही व्यवहार करते

है। अपने मित्र की छोटी मोटी किसी विशेष बात में त्रुटियों को देखते ही उसके सद्गुणों पर पानी फेर देने की कैसी प्रबल प्रवृत्ति हमारे हृदय में जाग्रत् हो उठती है।

जल-गणित विद्या में किसी पिण्ड पर दो प्रकार के दबाव माने जाते हैं, एक सम्पूर्ण दबाव और दूसरा लब्ध दबाव। किसी पिंड पर सम्पूर्ण दबाव असीम और लब्ध दबाव शून्य हो सकता है। भारत में बहु-संख्यक शक्तियों का कोई लब्ध दबाव प्रकट नहीं होता, क्योंकि वे एक दूसरे के विरुद्ध खड़ी होने से अकारथ हो जाती हैं। क्या यह स्थिति करुणा-जनक नहीं है ? इसका कारण क्या है ? यही कि हरएक दल अपने पड़ौसी के दोषों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस प्रकार मेल कभी नहीं हो सकता। संदेहात्मक आधार पर दोषारोपण की प्रवृत्ति ही एक दुष्ट शक्ति के रूप में हमारे बीच आपत्ति जनक योग्य चरित्रवाले मनुष्यों को पैदा करने लगती है। "किसी को चोर कहो और वह चोरी करने लगेगा" यह एक निर्विवाद स्वतः-सिद्ध सच्चाई है।

क्या हमारे आधार में कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं है ? क्या हमारे पड़ौसियों में कोई प्रशंसनीय गुण नहीं होते ? क्या भारत के विभिन्न दलों में एकता का कोई बन्धन नहीं है ? शुद्धता या अशुद्धता के नाम पर हमें ईश्वर की खुफ़िया पुलिस के स्वय-निर्वाचित सदस्यों का अभिनय करके किसी ऐसे मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र में झांकने का क्या अधिकार है जिसका सार्वजनिक चरित्र देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहा है ? व्यक्तिगत आचरण का प्रश्न तो उसके और परमेश्वर के बीच का प्रश्न है। हम उसमें हस्तक्षेप करने वाले कौन हैं ? दूसरों के गुण-दोषों पर विचार करने में हमारी शक्ति का जितना अपव्यय होता है, वह हमें अपने आदर्शों के अनुसार जीवन-निर्वाह करने में लगाना चाहिए। क्या बाहरी दबाव के द्वारा मनुष्य एक पग भी सदाचार के
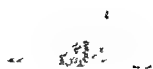
हम संक्रमण-नक संसर्ग के भय से, उनकी संगति से बचने की चेष्टा करते हैं। नई देव और नए विचार का निर्माण दृष्टि और प्राचीन देव और विचार दृष्टि का विनाश साथ-साथ चलता है। जब तक दुनिया में उन्नति के लिए गुंजायश रहेगी तब तक तुलना और समालोचना की वृत्ति भी बराबर बनी रहेगी। वस्तुतः समालोचना और तुलना करने की यह प्रवृत्ति अवांछनीय नहीं है, और न उसका मूलोच्छेद ही संभव है, किन्तु अवांछनीय तो है उसमें भरा हुआ हलाहल विष, जो पक्ष-विपक्षवालों को 'व्यक्तित्व' की भावना से सम्पन्न कर देता है, उन्हें 'व्यक्ति' मानने लगता है। हमें इस वध करने योग्य क्षुद्र "मैं" को परे फेंक देना चाहिए, क्योंकि अकेले इसी के द्वारा हममें और दूसरों में पाप कर्म की संभावना होती है सभी प्रकार के पाप-ताप से मुक्त होकर हम अपने चारों ओर के सभी कर्मों और पुरुषों को वैज्ञानिक निष्पक्षता और दार्शनिक शांति से देख सकते हैं, जैसे कि रासायनिक या वनस्पति शास्त्र विशारद हरएक वस्तु को अत्यन्त शान्त चित्त से, यथार्थ रूप से और सूक्ष्मता से जाँचते हैं और उन्हें अपने निरीक्षणस्थ पौधों और द्रव्यों में उलझ जाने का कभी कोई भय नहीं होता परख सकते हैं जैसे सर्वसाक्षिन् सूर्य झाड़ियों और गुलाबों, ऊसर और बगीचों, स्त्री और पुरुषों, पशुओं और पौधों, चींटियों और मेंढ़कों, सबको एक समान देखता और सहायता देता है।

जैसे महामारी से बचने का एकमात्र उपाय है आरोग्यशास्त्र के नियमों के अनुसार चलना, उसी प्रकार विद्वेषजन्य राजनीति से रक्षा पाने का एकमात्र मार्ग है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के नियम के अनुसार अपने पड़ोसी के प्रति प्रेम के नियम के अनुसार जीवन यापन करना है।

यदि हम केवल उचित त्याग करने के लिए तैयार हों तो समृद्धि-शाली होना उतना ही सहज है जितना कि दुर्दशा ग्रस्त अभागी होना। "बलिदान से विपत्ति टल जाती है", यह कहावत आज भी उतनी ही

सत्य है जितनी कि सुन्दर प्राचीन युग-युगान्तरों में थी, किन्तु यहाँ बलिदान का अर्थ निरीह निरपराध पशुओं की बलि से नहीं है। उसका अर्थ है हमारी दलबन्दियों का जाति-गत भेद-भावनाओं का, ईर्ष्या-द्वेष का, प्रेम की वेदी पर हवन कर देना जिस प्रेम के द्वारा हमें इसी लोक में स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।

समालोचित पुरुष के प्रति

छिद्रान्वेषण समालोचना समानता का आवाहन करनेवाली होती है। वह परमात्मा की काट-छाँट करनेवाली प्रक्रिया है, जो हमें अधिक सुन्दर बनने में सहायता देती है। समालोचना छिद्रान्वेषण की कैंची का स्पर्श होते ही भीतर धसकर टटोलो ज़रा तुम्हारे हृदय में कैसी उथल पुथल है। उस समय क्षुद्र भावनाओं में उतरने की प्रवृत्ति उदय होती है और बस, यहीं सावधानी का अवसर है। एक हलकी सी डोंगी में सवार मनुष्य के जो वेगवती और चट्टानों से घिरी हुई सक्षुब्ध जलधार में अज्ञात समुद्र की ओर बहती जाती है स्थिति की भयङ्करतायें सदा चौकन्ना बनाये रखती हैं। ज्योंही उसकी नौका किसी चट्टान से भिड़ने को होती है, वह पूर्ण सतर्क हो उठता है। यदि ऐसी मुठभेड़ उपयोगी न होती तो कौन इन की परवाह करता। जिसे हम पीड़ा समझते हैं वह तो हमें सावधान करने के लिए आवश्यक सूचना है, सजीव प्राणियों को ऐसे उत्तेजनाओं की आवश्यकता होती है।

मित्रों की हो या शत्रुओं की हो, रूखर समालोचना स्वप्न का हौवा के समान है जो तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप, अपने आप में जगाती है। जाग पड़ने पर स्वप्न का जू=जू कहाँ रहता है? वह तो कभी था नहीं, प्रेम के विधान के अनुसार ज्यों ही हम अपने आपको ठीक ठाक कर लेते हैं, त्यों ही सारी हानियाँ पूर्ण लाभ में परिणत हो जाती हैं। एक अंग्रेज़ी किस्सा है कि बेचारी सिंडरेला ने अपनी चप्पलें खो दीं, उसकी

निर्दोषिता ने उसे उसकी चप्पल भी दिला दी और घाने में आजीवन साथी (पति) के रूप में सम्राट भी उसे मिल गया।

जब हम 'सर्व' से अभेद होते हैं, तब धोखेबाज हमारे पास आने का साहस नहीं कर सकते। चोर उसी घर में घुसते हैं, जहाँ अँधेरा होता है। जिस मनुष्य में लोगों के नेता होने की योग्यता होती है वह सहायकों की मूर्खता, अनुयायियों की कृतघ्नता, जाति की अश्रद्धा, जनता की गुण-ग्राहकहीनता की शिकायत कदापि नहीं करता। ये बातें तो जीवन के महान कौतुक में चलती ही रहती हैं, इनका सामना करना तथा निरुत्साहित होकर और हार मानकर इनके सामने नत-मस्तक न होना ही शक्ति का अन्तिम प्रमाण है। अनावश्यक संघर्ष मन की व्यर्थ रगड़ और घिसन से बचे रहो, फिर ऐसा कौन सा काम है जो संतोषजनक रीति से पूरा नहीं हो सकता?

O Love, Sweet Love,

For ages and ages Thou gavest me the dor.
Now hiding behind the foes and friends,
Now disappearing in the criticisms and praise.
Now lost in pleasures and pride,
Concealed in troubles and pains,
Then out of sight in life's hard trials,
Forgotten in the midst of losses and gains.
O Love ! Sweet Love !
For ages and ages Thou gavest me the dor.

Percussions, concussions of trials and joys,
Hard blows and knocks, all smiles and sighs,

With a wondrous chemistry, with a strange,
Electricity
A purifying process, a disengaging analysis,
From loves and hatred, concerns, attachments,
clingings,
Repulsions, from the ore of passions,
Brought out of my heart, a Radium of Glory.
O what a strange story !
O Love, Sweet Love,
For ages and ages Thou gavest me the dor

ऐ प्रेम ! ऐ मधुर !
युगो से तू मुझे झाँसा दे रहा है ।
कभी मित्रो और शत्रुओ के पीछे तू लुकता है,
कभी प्रशंसा और विपरीत आलोचना (निन्दा) मे तू गायब हो जाता है।
अब सुख और गर्व में तू भूल जाता है,
दुखों और पीडाओ मे तू छिप जाता है,
तब तू जीवन की कठिन परीक्षाओ मे अदृश्य हो जाता है,
हानियो और लाभो के बीच मे तू विस्मृत हो जाता है,
ऐ प्रेमात्मा ! मधुर प्रेम !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है ।

मुसीबतो और हर्पों के आघात और धक्के,
सब कठिन प्रहार और ठोकरें सब मुसकानें
और आहें,

क्रान्ति अद्भुत रसायन-शास्त्र और
विलक्षण विद्युत से,
शोधक प्रक्रिया और पृथक कारी विश्लेषण से,
प्रेम और द्वेष, सम्बन्धों, अनुराग, और
लगनों से,
निराकरण से और मनोविकारों की खान से,
मेरे हृदय से निकल लागू, प्रकाश की देदीप्यमान किरण,
अरे कैसी अद्भुत यह कहानी है !
ऐ प्रेम ! मधुर प्रेम !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।

From my Radium of heart,
X Rays do start,
To the objects of all sorts
Transparency impart
On all sides and parts
What a marvellous Art ?
O Love, Sweet Love ?
For ages and ages Thou gavest me the dor.

—:o::o:—

Sarcasms so sharp,
All shakings and props;
Foes, friends, and shops
Your hiding walls
No more opaque,

Reveal to all
  O jewel of jewels!
My self Radium pure,
  Thou burnest as fuel
All caskets and purses,
  Valice, trunks and curses,
Doors, locks and boxes—
  All possessions obnoxious
O Truth, Radium pure!
O Self, omnivorous sure!
  O Love, Sweet Love!
For ages and ages Thou gavest me the dor-

मेरे हृदय की देदीप्यमान रश्मि (रेडियम्, Radium) से
गुप्त रेज़* निकलती है,
सब तरह के पदार्थों को ,
सब ओर और भागों को,
पारदर्शिता प्रदान करती है।
कैसा अद्भुत कौशल (हुनर) है!
ऐ प्रेम, मधुर प्रेम,
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है!

अति तीखे ताने (मार्मिक उपालंभ)
सब हिलोरें (आकुलता) और अवलंब (आश्रय, आधार)

---

*XRays (अनुसधान कारिणी प्रकाश किरणें)।

शत्रु, मित्र और दूकानें
तुम्हारी छिपानेवाली दीवालें,
जो अब अपारदर्शक नहीं रहीं,
सब तुम्हें व्यक्त (प्रगट) कर देती हैं।
रत्नों के रत्न !
मेरे आत्मा, विशुद्ध महाप्रकाश स्वरूप (रेडियन्ट) !
तू ईंधन की भांति जलाता है
सब डिबियाँ और थैलियाँ,
वेलिस (valice). पेटियाँ और अभिशाप,
कपाट, ताले और बक्स—
सब अधीन मिलकियतें।
ऐ सत्य स्वरूप विशुद्ध रेडियन्ट !
ऐ निश्चित ,सर्वभक्षी स्वरूप !
ऐ प्रेमात्मा, ऐ मधुर प्रेम स्वरूप !
युगों और युगों से तू मुझे झांसा दे रहा है।

स्वच्छ (सम्यक्) दृष्टि

बच्चे हर एक वस्तु को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं, अपने समान व्यक्ति समझते हैं। उनको मेघ की गरज सामने के किसी दूरस्थ क्रुद्ध मनुष्य की घुर्घुराहट मालूम होती है। इनसे उनकी कल्पना नहीं की जाती। कुछ और बड़े बच्चे, जिनके सम्पर्क में आते हैं उन सब को वे अविकसित या अर्द्ध विकसित व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। जब कोई वस्तु उन्हें अपने विरुद्ध जाती मालूम होती है, तब प्रेम के विधान के अनुसार अपना बर्ताव ठीक करने के बदले परिस्थिति से बदला करने लगते हैं। जैसे कोई व्यक्ति सिरे पर बैठे मित्र से बुरी खबर सुन कर टेलीफोन रिसीवर को तोड़ने की इच्छा करे।

Reveal you all.
O jewel of jewels !
My self, Radium pure,
Thou burnest as fuel
All caskets and purses,
Valice, trunks and curses,
Doors, locks and boxes—
All possessions obnoxious
O Truth, Radium pure !
O Self, omnivorous sure !
O Love, Sweet Love !
For ages and ages Thou gavest me the dor-

मेरे हृदय की देदीप्यमान रश्मि (रेडियम्, Radium) से
एक्स रेज़ * निकलती है,
सब तरह के पदार्थों को ,
सब ओर और भागों को ,
पारदर्शिता प्रदान करती है ।
कैसा अद्भुत कौशल (हुनर) है !
ऐ प्रेम, मधुर प्रेम,
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है !

अति तीखे ताने (सनिंद उपालंभ)
सब हिलोरे (आकुलता) और अवलंब (आश्रय, आधार)

* XRays (अनुसंधान कारिणी प्रकाश किरणें) ।

शत्रु, मित्र और दूकानें
तुम्हारी छिपानेवाली दीवालें,
जो अब अपारदर्शक नहीं रहीं,
सब तुम्हें व्यक्त (प्रगट) कर देती हैं।
रत्नों के रत्न !
मेरे आत्मा, विशुद्ध महाप्रकाश स्वरूप (रेडियम्) !
तू ईंधन की भाँति जलाता है
सब डिबियाँ और थैलियाँ,
वेलिस (valice), पेटियाँ और अभिशाप,
कपाट, ताले और बक्स—
सब अधीन मिलकियतें।
ऐ सत्य स्वरूप विशुद्ध रेडियम् !
ऐ निश्चित ,सर्वभक्षी स्वरूप !
ऐ प्रेमात्मा, ऐ मधुर प्रेम स्वरूप !
युगों और युगों से तू मुझे भाँसा दे रहा है।

स्वच्छ (सम्यक्) दृष्टि

बच्चे हर एक वस्तु को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं, अपने जैसा व्यक्ति समझते हैं। उनको मेघ की गरज सामने के किसी दूरस्थ क्रुद्ध मनुष्य की घुर्घुराहट मालूम होती है। इससे उनकी कल्पना नहीं की जाती। कुछ और बड़े बच्चे, जिनके संसर्ग में आते हैं उन सब को वे अविकसित या अर्द्ध विकसित व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। जब कोई वस्तु उन्हें अपने विरुद्ध जाती मालूम होती है, तब प्रेम के विधान के अनुसार अपना बर्ताव ठीक करने के बदले परिस्थिति से बखेड़ा करने लगते हैं। जैसे कोई अदृश्य सिरे पर बैठे मित्र से बुरी खबर सुन कर टेलीफोन रिसीवर को तोड़ने की इच्छा करे।

आस्ट्रेलिया के काले निवासियों का ऐसा विश्वास है कि गूढ़ यंत्र-मंत्र तथा ऐसे ही अन्य प्रयोगों से जिन्हें 'मेलका' कहते हैं, वे स्वयं पानी बरसाया करते हैं। एक विश्वसनीय ऐतिहासिक ने लिखा है कि "जब यात्रा में अन्युग्र उष्णदेशीय वृष्टि-तूफानों से हम घिर जाते थे तब हमारे काले अनुचर अपने उन अपरिचित साथियों पर बहुत बिगड़े" जो बिना अवसर वर्षा किया करते थे। जो अपने पड़ोसियों के अपराधों पर किसी भी रूप से बिगड़ते और परेशान होते हैं वे इन्हीं आदिम प्राचीन कृष्णवर्ण निवासियों के समान तमसाच्छन्न अज्ञानी हैं। वृष्टि होती है और इस वृष्टि का कारण प्रकृति के निरहंकार नियम के सिवा और क्या हो सकता है। फूल खिलता है, मानों वही अहंकार शून्य प्राकृतिक नियम प्रादुर्भाव में आता है ठीक इसी तरह ईसा को धोखा देनेवाले जुडास प्रेम का नियम ही अपनी पूर्ण शक्ति के धोखे की नियत से भरे हुए चुम्बन में भी, यद्यपि वह इस रहस्य को जानता न था, काम करता था। प्रेम के नियम के सिवा वहाँ और कौन सा नियम हो सकता था। उस मिथ्या चुम्बन के बाद जो घटना हुई उसके बिना ईसा को अब तक कौन याद करता ?

मनोहर जोज़ेफ अपने क्षमा मांगनेवाले भाइयों से कहता है—"मुझे कुएँ में फेंकनेवाले तुम नहीं थे, तुमने मुझे कुएँ में नहीं डाला था। प्रेम स्वरूप प्रभु को ही मिश्र में मेरी प्रभुता बढ़ाने के लिए, मेरे सगे भाइयों से बढ़कर कोई प्रेमी साथी नहीं मिले। हरएक वस्तु मेरे गिनने और देखते ही देखते इतनी तेज़ी से, इतनी जल्दी बदलती, डाटती और उड़ती हुई मालूम होती है कि मैं किसी भी पदार्थ को स्थिरता और व्यक्तित्व का जामा नहीं पहना सकता। फिर मैं समालोचना किस की करूँ सारा दृश्य ऐसा है जैसे चपला की चकाचौंध में पूरे वेग में दौड़ती हुई रेलगाड़ी या उड़ता हुआ मेघ है। हम उसे अचल या स्थिर समझने लगते हैं। जब अधिक जानकारी होती है तब हम कुछ और ही सोचते हैं। इसी तरह हम लोग माया के चञ्चल प्रकाश में

वस्तुओं को देखकर केवल उतने आधार पर स्थिरता, व्यक्तित्व तथा अधिकार का भाव जमा लेते हैं। यही सांसारिक बुद्धिमता है। नित्य-सत्य-स्वरूप और आन्तरिक अन्तरतत्त्व के प्रकाश में वस्तुओं को देखो और तुम स्वयं अमर शान्ति के साथ एक हो जाओगे।

मानवजाति के तर्क-वितर्क और वादानुवाद सदा व्यर्थ सिद्ध होते हैं। वादविवाद से भेद भावों को मिटाने के प्रयत्न मात्र फूट, असंतोष और विकलता पैदा करते हैं। क्यों? विशाल भवन उठाने से पहले नींव ठीक तरह पर नहीं रक्खी जाती। पहले हृदय को वश में करो, फिर बुद्धि पर प्रभाव डालो। जहाँ युक्ति नहीं चलती, वहाँ प्रेम के जीतने की संभावना रहती है। कहानी में हवा उस पथिक से कोट न उतरवा सकी थी, किन्तु गर्मी ने उतरवा दिया था।

लोग विचारों और मतों की एकता के लिए आवश्यकता से अधिक उत्सुक रहते हैं। वे आत्माओं की एकता की प्रत्याशा नहीं करते। अंग्रेज़ी में एक सुन्दर शब्द है "अंडरस्टैंडिंग" जिसका अर्थ समझना है उसके एक खण्ड अंडर का अर्थ है नीचे और दूसरे स्टैंडिंग का खड़े होना। अर्थात् समझने का अर्थ है बाह्य रूपों और स्थूलिक चित्त वृत्तियों के नीचे खड़े होना। यह समझना प्रेम द्वारा ही सम्पन्न होता है। जब तक तुम हृदय से सबका मान नहीं करते, तब तक तुम सबको नहीं जान सकते। तुम्हें सोचने-विचारने की उतनी ज़रूरत नहीं है जितनी नीचे बैठने, भीतर पैठने की है। यदि प्रेम कानून भंग करता है, तो वही क़ानून की पूर्ति है। यदि कोई दूसरी वस्तु कानून भंग करती है तो विप्लव और क्रान्ति मच जाती है। प्रेम ही एकमात्र दैवी विधान है। दूसरे क़ानून तो संगठित डकैतियाँ हैं। केवल प्रेम को ही क़ानून तोड़ने का अधिकार है। प्रेम का अधिकार दैवी अधिकार है; क़ानून का अधिकार ग़ैरक़ानूनी है।

ए भारत के राजनीतिज्ञो! तुम अभी तक विरोधी समालोचन

और जली-कटी शिकायतों से काम लेते रहे हो, किन्तु अवस्था दिन प्रति-दिन बिगड़ती जाती है। अब तुम्हें ठीक उपाय से काम करने का यत्न करना चाहिए। यदि एक पक्ष ने अन्याय किया तो बदले में अन्याय करने से केवल पहली कालिख में एक कालिख और जुड़ जायगी, किन्तु वह सफ़ेदी नहीं बना सकती। एक वयोवृद्ध सज्जन एक लड़के को तमाचा लगानेवाले थे, क्योंकि उसने उनका अपमान किया था। डपटते हुए बोले —"मूर्ख! तू बदतमीज़ी क्यों करता है?" लड़के ने उत्तर दिया— "श्रीमान्! आपके कथनानुसार 'मूर्ख' होने के कारण मैंने शरारत की। पर आप तो बुद्धिमान् हैं, अपने योग्य बर्ताव कीजिये।"

जब कोई विद्युत्पूर्ण पिंड दूसरे पिंड के संसर्ग में न आकर केवल उसके निकट में पहुँचता है, तब उसका दूसरे पिंड पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे विद्युत धार का प्रभाव कहते हैं, जो बिलकुल उलटा होता है, अर्थात् यदि प्रथम पिंड में धनात्मक विद्युत होती है तो दूसरे पिंड में ऋणात्मक बिजली पैदा हो जाती है। यदि आप सजातीय विद्युत् पैदा करना चाहते हैं तो उसके लिए वास्तविक संस्पर्श होना चाहिये। अतएव जाति और वंश की भावनाओं की पारदर्शक टट्टियाँ हमारे हृदयों का मेल नहीं होने देतीं। ऐसी स्थिति में तुम युक्ति और तर्क से अपने विवादग्रस्त मामले को निपटाना चाहते हो, तब तुम विद्युत्-धार के उस सामीप्य में आजाते हो, जिसके फलस्वरूप परिणाम तुम्हारे इच्छित परिणाम के ठीक विपरीत होता है। तुम किसी मनुष्य को उस समय तक नहीं पहचान सकते, जब तक पहले तुम उसे प्यार न करो। जहाँ युक्ति की दाल नहीं गलती, वहाँ प्रेम की आशा हो सकती है।

धर्मों, मतों और उपाधियों को लोग गले की शोभा के लिए तावीज़ों की भाँति धारण करते हैं। और इन तावीज़ों में सभी प्रकार के गुण और शक्तियाँ बतलायी जाती हैं, तथापि जो थोड़ी बहुत सफलता हमें में मिलती है, उसका उनके इन आदले तावीज़ों से कुछ भी

सरोकार नहीं होता। हमें अपने मनुष्यत्व का उद्धार करना चाहिए और अपने इच्छित अन्धविश्वासों से ऊपर उठना चाहिए। नाम और रूप के इन खिलौनों से तुम कब तक चिपटे रहोगे ?

हाँ, तुम्हें एक के बाद एक अपने सभी दुलारे पक्षपातों, अधिकारों, अनुरागों और आसक्तियों को त्यागना पड़ेगा। अभी तो तुम्हारे अधिकार और सम्पत्ति तुम पर अधिकार जमाकर तुम्हें गुलाम बनाये हुए हैं। किसी चीज या व्यक्ति पर अधिकार जमाने में तुम स्वयं उस अधिकार के चक्कर में पड़ जाते हो। तुमको दुखदायी मालूम होनेवाले तुमको सब प्रकार से नंगा करनेवाले त्याग में ही आनन्दमय सफलता का भांडार छिपा हुआ है। राम को 'हरि' ईश्वर का सबसे प्यारा नाम लगता है, इसका शब्दार्थ है लुटेरा। ऐ प्यारे लुटेरे ! कुछ लोग शायद आपत्ति करें "ओह ! यदि हम प्रेम करें और शत्रु की शरण जावें तो वह हमें खा जायगा"। राम कहता है—"ऐ तू माया मुग्ध कपटी क्या कभी सचमुच तू ने इस प्रयोग की परीक्षा की है ?

जीवन के सभी द्वारों पर लिखा हुआ है कि पुल (pull) खींचो किन्तु तुम उसे गलत पढ़कर उसे पुश (push) धक्का देते हो। ऐसी अवस्था में दरवाजा कैसे खुलेगा ? धक्का देना तर्क-वितर्क करना है। खींचना प्रेम के द्वारा अपने भीतर बैठाना है। हृदय अन्तः प्रेरणा के महोत्सव-भवन का प्रवेश-द्वार है। सिर उसका निकास है। प्रेम अन्तःप्रेरणा उत्पन्न करता है, सिर व्याख्या करता है। भावनायें सदा विचार से पहले पैदा होती हैं जैसे शरीर सदा वस्त्रों से पहले होता है। किसी व्यक्ति की भावनाओं को बदल दो, उसके सोचने-विचारने की शैली में एकदम क्रान्ति हो जायगी।

जीवन क्या है ? दिन-[illegible] की [illegible]। किन्तु जिनके लिये जो जीवन के ऊपरी सतह पर रहते हैं उनके लिए जीवन ऐसा ही है। किन्तु जो सच्चा जीवन प्रेम का जीवन व्यतीत करते हैं, उनके लिए प्रेम

और जली-कटी शिकायतों से काम लेते रहे हो, किन्तु अवस्था दिन प्रति-दिन बिगड़ती जाती है। अब तुम्हें ठीक उपाय से काम करने का यत्न करना चाहिए। यदि एक दल ने अन्याय किया तो बदले में अन्याय करने से केवल पहली कालिमा में एक कालिमा और जुड़ जायगी, किन्तु वह सफेदी नहीं बना सकती। एक वयोवृद्ध सज्जन एक लड़के को तमाचा लगानेवाले थे, क्योंकि उसने उनका अपमान किया था। कड़कते हुए बोले —"मूर्ख! तू बदतमीज़ी क्यों करता है?" लड़के ने उत्तर दिया— "श्रीमान्! आपके कथनानुसार 'मूर्ख' होने के कारण मैंने शरारत की। पर आप तो बुद्धिमान हैं, अपने योग्य बर्ताव कीजिये।"

जब कोई विद्युत्पूर्ण पिंड दूसरे पिंड के संस्पर्श में न आकर केवल उसके निकट में पहुँचता है, तब उसका दूसरे पिंड पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे विद्युत धार का प्रभाव कहते हैं, जो बिलकुल उलटा होता है, अर्थात् यदि प्रथम पिंड में धनात्मक विद्युत् होती है तो दूसरे पिंड में ऋणात्मक बिजली पैदा हो जाती है। यदि आप सजातीय विद्युत् पैदा करना चाहते हैं तो उसके लिए वास्तविक संस्पर्श होना चाहिये। अतएव जाति और वर्ग की भावनाओं की पारदर्शक टट्टियाँ हमारे हृदयों का मेल नहीं होने देतीं। ऐसी स्थिति में तुम युक्ति और तर्क से अपने विवादग्रस्त मामले को निपटाना चाहते हो, तब तुम विद्युत्-धार के उस सामीप्य में आजाते हो, जिसके फलस्वरूप परिणाम तुम्हारे इच्छित परिणाम के ठीक विपरीत होता है। तुम किसी मनुष्य को उस समय तक नहीं पहचान सकते,जब तक पहले तुम उसे प्यार न करो। जहाँ युक्ति की दाल नहीं गलती, वहाँ प्रेम को आशा हो सकती है।

धर्मों, मतो और उपाधियो को लोग गले की शोभा के लिए तावीजों की भाँति धारण करते हैं। और इन तावीजो मे सभी प्रकार के गुण और शक्तियाँ बतलायी जाती है, तथापि जो थोडी बहुत सफलता हमें अन्त में मिलती है, उसका उनके उन लाडले तावीजो से कुछ भी

सरोकार नहीं होता। हमें अपने मनुष्यत्व का उद्धार करना चाहिए और अपने कुत्सित अन्धविश्वासों से ऊपर उठना चाहिए। नाम और रूप के इन खिलौनों से तुम कब तक चिपटे रहोगे?

हाँ, तुम्हें एक के बाद एक अपने सभी दुलारे पक्षपातों, अधिकारों, अनुरागों और आसक्तियों को त्यागना पड़ेगा। अभी तो तुम्हारे अधिकार और सम्पत्ति तुम पर अधिकार जमाकर तुम्हें गुलाम बनाये हुए हैं। किसी चीज या व्यक्ति पर अधिकार जमाने में तुम स्वयं उस अधिकार के चक्कर में पड़ जाते हो। तुमको दुखदायी मालूम होनेवाले तुमको सब प्रकार से नंगा करनेवाले त्याग में ही आनन्दमय सफलता का भंडार छिपा हुआ है। राम को 'हरि' ईश्वर का सबसे प्यारा नाम लगता है, इसका शब्दार्थ है लुटेरा। ऐ प्यारे लुटेरे! कुछ लोग शायद आपत्ति करें "ओह! यदि हम प्रेम करें और शत्रु की शरण जावें तो वह हमें खा जायगा"। राम कहता है—"ऐ तू माया मुग्ध कपटी क्या कभी सचमुच तू ने इस प्रयोग की परीक्षा की है?"

जीवन के सभी द्वारों पर लिखा हुआ है कि पुल (pull) खींचो किन्तु तुम उसे गलत पढ़कर उसे पुश (push) धक्का देते हो। ऐसी अवस्था में दरवाजा कैसे खुलेगा? धक्का देना तर्क-वितर्क करना है। खींचना प्रेम के द्वारा अपने भीतर बैठाना है। हृदय अन्तः प्रेरणा के महोत्सव-भवन का प्रवेश-द्वार है। सिर उसका निकास है। प्रेम अन्तःप्रेरणा उत्पन्न करता है, सिर व्याख्या करता है। भावनायें सदा विचार से पहले पैदा होती हैं जैसे शरीर सदा वस्त्रों से पहले होता है। किसी व्यक्ति की भावनाओं को बदल दो उसके सोचने-विचारने की शैली में एकदम क्रान्ति हो जायगी।

जीवन क्या है? विघ्न-बाधाओं की शृंखला। किन्तु किनके लिये जो जीवन के ऊपरी सतह पर रहते हैं उनके लिए जीवन ऐसा ही है। किन्तु जो सच्चा जीवन प्रेम का जीवन व्यतीत करते हैं, उनके लिए ऐसा

नहीं। यह कितना भ्रम है कि गप-शप करने वालों, नाम रूप में विश्वास करनेवालों और लगातार शोर मचाने "अविद्या" के निकृष्ट गुलामों की संगति से बढ़कर विपत्ति अन्य संसार में कोई भी नहीं है, किन्तु जहाँ प्रेमरूपी प्रभु डेरा डालता है, वहाँ भला कोई बेहूदा आचार कैसे पर मार सकता है, उनकी संगति से घृणा करने की ज़रूरत हमें नहीं पड़ती। क़ानून क़ानून नहीं रह सकता और प्रकृति झूठों से अधिक शुद्ध नहीं हो सकती, यदि बिना प्रयोजन उन अवसरों को छोड़ कर जब उनकी सेवा की आवश्यकता हो, तुम्हारा समय नष्ट करने की हिम्मत करे।

पंजाब का एक ग़नीमत नामक सज्जन अपने ग्रन्थ "नैरंगेइश्क़" में एक पाठ्शाला-शिक्षक, एक ग़रीब उस्ताद अज़ीज़ की चर्चा करता है, जो अपने एक शाहीद नामक विद्यार्थी के प्रेम मे दीवाना था। अपने विद्यार्थियो की सुलेख नक़लों को सुधारते समय प्रेम दीवाना शिक्षक अपने उस विद्यार्थीगुरु की, जिसने पाठशाला मे हाल ही में पढ़ना शुरू किया था, धब्बेदार और टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों को अपना आदर्श बना लेता था। शाबाश ! क्या ख़ूब ! ! दोष तभी दिखाई देते हैं जब प्रेम के अभाव से हमारे लोचन पाण्डुरोग (पीलिया) ग्रस्त रहते हैं जब प्रेमरूपी प्रभु हमारे हृदय मे डेरा डालता है, तब मानो एक दिन की प्रभा दूनी हो जाती है, मानो एक दूसरा सूर्य आकाश-मंडल मे चमकने लगता है।

सत्यशीलता

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो पवित्रता के नाम पर प्रेमरूपी प्रभु के विरुद्ध खड्ग-हस्त हो उठते हैं। जैसे प्रेम के बिना पवित्रता एक क्षण के लिए भी टिक सकती है। कुछ प्रेम के मारे मरते हैं, कुछ घृणा से मरते हैं। संसार की दृष्टि में निन्दनीय किन्तु सच्चे प्रेम की अपेक्षा दाम्भिक पवित्रता से युक्त घृणा को हृदय में स्थान देना घातक, कहीं अधिक घातक होता है। संसार में अपवित्रता के गुलाम काफ़ी रहते हैं,

किन्तु शायद उनसे बढ़ कर भयकर होते है वे पवित्रता के दास, जो सदाचार की आड मे अपनी दुर्बलता छिपाते है। अपने प्रति सच्चे और निर्मल बनो। अपने अनुभव के अनुसार जीवन बिताओ। अपने अनुभव से अधिक प्रवीण और कोई शिक्षक ससार मे नही है।

अपने अनुभव की सहायता के बिना कोई मनुष्य कदापि हृदय से शुद्ध नहीं हो सका। बाहरी पवित्रता की छोटी-मोटी बातों को—नहीं, नहीं, स्त्री-जाति से घृणा की आदत को—अनुचित महत्त्व प्रदान करना, तुम्हें एकमात्र सच्ची पवित्रता—आत्मा साक्षात् से दूर कर देता है। लिंग हीनता के और अत्यन्त नपुंसत्व को ही सब कुछ, सर्वोपरि मान बैठना ग्रहपथ के सच्ची परिधि मे भटक कर बाहरी स्पर्श रेखाओ की दिशा मे भटकाना है।

यदि सदाचार का दम भरनेवाले और ढिंढोरा पीटनेवाले लोगों का पीछा छोड दे, तो जिसे हम शारीरिक और मानसिक स्वच्छता कहते है वह उसी प्रकार स्वभावत. और सरलतापूर्वक सीख ली जाय, जैसे बच्चे आरोग्य की दृष्टि से, स्वास्थ्य का साधारण नियम समझकर, नियम-पूर्वक हाथ धोना सीख लेते हैं। कामुकता व भोगासक्ति के विरुद्ध लट्ठ लेकर पीछे पड़ना उस बात की सृष्टि करना है, 'जिससे ईश्वरदत्त मानव-प्रकृति मुक्त है। अपने पौरुष को उच्चतर विषयो में जुटा दो और फिर तुम्हें ऐसी बाते सोचने का ही समय न रह जायगा, जिनमे कामुकता की गध हो।

पाठशालाओ का काम है कि युवकों मे स्वयं सोचने-विचारने की शक्ति पैदा करे, किन्तु वे इसके बदले उनमें बौद्धिक दारिद्र्य पैदा करती है। उपदेशात्मक आदेशों से नैतिक दरिद्रता उत्पन्न होती है। भोले-भाले, सीधे लड़को और लड़कियो पर बलपूर्वक धार्मिक विश्वासो के लादने से आध्यात्मिक दरिद्रता का उदय होता है। आध्यात्मिक दरिद्रता और धार्मिक कट्टरता क्रमशः रोग की निष्क्रिय और सक्रिय अवस्थायें है।

सभी नदियाँ एक ही सागर में गिरती हैं। समस्त प्रेम सरितायें भी उसी एक प्रेम सागर में मिलती हैं। ईश्वर के वक्षस्थल पर सौंदर्य खिलता है। सौंदर्य का कमल ब्रह्मा की नाभि से उत्पन्न हुआ है। जो सौंदर्य से प्रेम करता है वह उसे क्षीर सागर में शयन करने-वाले भगवान् विष्णु के द्वारा प्राप्त और अनुभव कर सकता है। सचमुच सौंदर्य ही आत्मा का घर है और सौंदर्य ही आत्मा का भोजन है। सौंदर्य भाव से रहित प्राणी केवल राजद्रोह, छल-कपट और लूट-मार जैसे कामों का अधिकारी होता है। किन्तु सौंदर्य है कहाँ? क्या वह नीले नेत्रों की ज्योति में है, गुलाबी गालों की चमक है, कोकिल कंठ के मधुर स्वर में है, क्या वह सुन्दर भूभागों में और ललित कलाओं में निवास करता है? हाँ, वह उनमें है, किन्तु उन्हीं में परिमित नहीं है। वास्तव में वह सौंदर्योपासना की रुचि शोचनीय है, जिसे जाड़े भर आनन्द की प्राप्ति के लिए वसन्तागमन की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कितनी करुणा-जनक है उस संगीत-प्रेमी की दशा, जिसकी कठिनाई से तुष्ट होनेवाली बारीक रुचि को, एक सन्तोष-जनक, मधुर स्वर सुनने की खोज में सैकड़ों बार विफल मनोरथ और आहत होना पड़ता है। सचमुच वह व्यक्ति बड़ा दुखी है कि जिसका सुख मनोहर भूप्रदेशों, बागों, अनुकूल साथियों, मधुर शब्दों और अपने से बाहर की वस्तुओं पर निर्भर है।

स्वाधीन पुरुष तो वह है जिसका आन्तरिक प्रकाश उसके आस-पास की सभी वस्तुओं को प्रभा-मण्डित कर देता है और जिससे केवल दैवी-प्रेम की किरणें मात्र फूटती रहती हैं। चैतन्य-महाप्रभु के सामने आने पर लुटेरों और शराबियों तक में सुप्त दैवी प्रकृति ऊपर की सतह पर खिंच आती थी।

स्वेच्छाधारी सूर्य ने अपनी यात्राओं के मार्ग में सदा प्रकाश के कभी कुछ और भी देता है।

योग दर्शन का क्या यह सूत्र गलत है जिसमें जीवन्मुक्त पुरुषों की प्रेम शक्ति से वन-पशुओं तक में प्रेम-प्रकृति के पुनरुद्धार और प्रादुर्भूत होने की चर्चा है ? क्या सभी धर्मों का स्वर्ग सदा स्वप्न रूप ही नहीं बना रहेगा यदि वे इस जीते-जागते से शून्य रहते हैं ?

पवित्रता क्या है ?

परिच्छिन्नता और व्यक्तित्व के प्यासे और लोलुप खयालों से अपने ईश्वरत्व स्वभाव को अकलंकित रखना ही पवित्रता है। पूर्ण पवित्रता का अर्थ है बाहरी प्रभावों के चंगुल में न फँसना। सांसारिक आकर्षण और घृणा से परे रहना, रीझ और खीझ से अविचलित होना, राग और द्वेष से प्रभावित न होना। अभेद दृष्टि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार वृत्ति के द्वारा निर्द्वन्द्व स्थिति प्राप्त करना ही पवित्रता है। जो पवित्रात्मा हैं केवल वे ही प्रकृति का रसास्वादन करते हैं, सब नामों और रूपों के दर्पण में अपना ही आन्तरिक "स्वर्ग साम्राज्य" देखते हुए मनोहर दृश्यों और भूभागों का आनन्द लेते हैं जैसे कोई सुन्दरी दर्पण में अपनी ही मुस्कराहट देखकर प्रसन्न होती हो। सच्चा पवित्रात्मा तो वहाँ भी प्रेम करता है जहाँ तुम प्रेम नहीं कर सकते। बल्कि पवित्रात्मा सदा प्रेम, अतः प्रेरक से आगे-आगे बढ़ता रहता है। उसका प्रेम हृदय को कमजोर करनेवाली आसक्ति या मनचली भावुकता नहीं होती। सच्ची पवित्रता मात्र ही सच्चा प्रेम है, और सच्चा प्रेम ही विशुद्ध पवित्रता है। कभी-कभी नैतिक दौर्बल्य भी पवित्रता के नाम से पुकारी जाती है, जैसे आसक्ति (लगन) प्रेम का नाम धारण कर लेती है।

जब तुम किसी वस्तु की चाह में पड़ जाते हो तब तुम उसके आनन्द का उपभोग कदापि नहीं कर सकते। एक ?ाहरी प्रकृति-प्रेमी बाग का जैसा रसास्वादन कर सकता है, यद्यपि बाग का मालिक कहलाने वाला नहीं कर सकता, उसके लिए तो उसका फलना-फूलना सौंदर्य निरन्तर चिन्ता और परेशानी का साधन बन जाता है। हमें

सभी नदियाँ एक ही सागर में गिरती हैं। समस्त प्रेम सरितायें भी उसी एक प्रेम सागर में मिलती हैं। ईश्वर के वक्षस्थल पर सौंदर्य खिलता है। सौंदर्य का कमल ब्रह्मा की नाभि से उत्पन्न हुआ है। जो सौंदर्य से प्रेम करता है वह उसे क्षीर सागर में शयन करने-वाले भगवान् विष्णु के द्वारा प्राप्त और अनुभव कर सकता है। सचमुच सौंदर्य ही आत्मा का घर है और सौंदर्य ही आत्मा का भोजन है। सौंदर्य भाव से रहित प्राणी केवल राजद्रोह, छल-कपट और लूट-मार जैसे कामों का अधिकारी होता है। किन्तु सौंदर्य है कहाँ? क्या वह नीले नेत्रों की ज्योति में है, गुलाबी गालों की चमक है, कोकिल कंठ के मधुर स्वर में है, क्या वह सुन्दर भूभागों में और ललित कलाओं में निवास करता है? हाँ, वह उनमें है, किन्तु उन्हीं में परिमित नहीं है। वास्तव में वह सौंदर्योपासना की रुचि शोचनीय है, जिसे जाड़े भर आनन्द की प्राप्ति के लिए वसन्तागमन की प्रत्याशा करनी पड़ती है। कितनी करुणा-जनक है उस संगीत-प्रेमी की दशा, जिसकी कठिनाई से तुष्ट होनेवाली बारीक रुचि को, एक सन्तोषजनक, मधुर स्वर सुनने की खोज में सैकड़ों बार विफल मनोरथ और आहत होना पड़ता है। सचमुच वह व्यक्ति बड़ा दुखी है कि जिसका सुख मनोहर भूप्रदेशों, बागों, अनुकूल साथियों, मधुर शब्दों और अपने से बाहर की वस्तुओं पर निर्भर है।

स्वाधीन पुरुष तो वह है जिसका आन्तरिक प्रकाश उसके आस-पास की सभी वस्तुओं को प्रकाशमान कर देता है और जिससे केवल दैवी-प्रेम की किरणें मात्र फूटती रहती हैं। स्वतन्त्र-सत्ताप्रभु के सामने आने पर [illegible] और [illegible] में सुन्दर दैवी प्रकृति ऊपर की सतह पर तिर आती थी।

[illegible] सूर्य ने अपनी यात्राओं के [illegible] में [illegible] प्रकाश के कभी कुछ और भी देखा है।

योग दर्शन का क्या यह मत गलत है जिसमें जीवन्मुक्त पुरुषों की प्रेम शक्ति से जन-समुदायों तक में प्रेम-ज्योति के पुनरुद्धार और प्रादुर्भूत होने की चर्चा है? क्या सभी धर्मों का स्वर्ग सदा स्वप्न रूप ही नहीं बना रहेगा यदि वे इन जीते-जागते से शून्य रहते हैं?

पवित्रता क्या है?

परिच्छिन्नता और अनित्य के प्याले और लोलुप ख्यालों से अपने ईश्वरत्व स्वभाव को अकलंकित रखना ही पवित्रता है। पूर्ण पवित्रता का अर्थ है बाहरी प्रभावों के चंगुल में न फँसना। सांसारिक आकर्षण और घृणा से परे रहना, रीझ और खीझ से अविचलित होना, राग और द्वेष से प्रभावित न होना। अभेद दृष्टि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार वृत्ति के द्वारा निर्द्वन्द्व स्थिति प्राप्त करना ही पवित्रता है। जो पवित्रात्मा हैं केवल वे ही प्रकृति का रसास्वादन करते हैं, सब नामों और रूपों के दर्पण में अपना ही आन्तरिक "स्वर्ग साम्राज्य" देखते हुए मनोहर दृश्यों और भूभागों का आनन्द लेते हैं जैसे कोई सुन्दरी दर्पण में अपनी ही मुस्कराहट देखकर प्रसन्न होती हो। सच्चा पवित्रात्मा तो वहाँ भी प्रेम करता है जहाँ तुम प्रेम नहीं कर सकते। बल्कि पवित्रात्मा सदा प्रेम, अतः प्रेरक में आगे-आगे बढ़ता रहता है। उनका प्रेम हृदय को कमजोर करनेवाली आसक्ति या नकली भावुकता नहीं होती। सच्ची पवित्रता मात्र ही सच्चा प्रेम है, और सच्चा प्रेम ही विशुद्ध पवित्रता है। कभी-कभी नैतिक दौर्बल्य भी पवित्रता के नाम से पुकारी जाती है, जैसे आसक्ति (लगन) प्रेम का नाम धारण कर लेती है।

जब तुम किसी वस्तु की चाह में पड़ जाते हो तब तुम उसके आनन्द का उपभोग कदापि नहीं कर सकते। एक बाहरी प्रकृति-प्रेमी बाग का जैसा रसास्वादन कर सकता है, यद्यपि बाग का मालिक कहलाने वाला नहीं कर सकता, उसके लिए तो उसका फलना-फूलना सौंदर्य निरन्तर चिन्ता और परेशानी का साधन बन जाता है। हमें

इसी प्रेम या पवित्रता (क्रियात्मक चेतन) की आवश्यकता है। और सब वस्तुयें तो हमें अपने आप आ मिलेंगी।

पवित्रता कैसे मिलती है ?

अपनी वर्तमान अवस्था को, वह चाहे जैसी हो, उसी को महिमान्वित करने से अपनी सब वर्तमान स्थिति को सर्वोच्च मानने ही से तुम्हारे हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान अनायास उदय होने लगेगा। आत्म-साक्षात्कार के पीछे दौड़ने से जैसे वह कहीं दूर की चीज हो, आत्मज्ञान नहीं होता। बच्चा अपने बचपन के खेलों और आकांक्षाओं के प्रति सच्चा रहकर ही बचपन को पारकर प्रौढ़ता को प्राप्त करता है, वयस्क बालकों की बन्दर-जैसी नकल करके वह प्रौढ़ नहीं बन सकता।

सौंदर्य क्या है !

त्याग, अहंकार युक्त जीवन का त्याग निस्सन्देह, निस्संदेह व्यक्तित्व के पिण्डीकृत जीवन को खोना ही अमर जीवन की प्राप्ति है। सूर्य की किरणों में विद्यमान सब रंगों को सोख लेनेवाली, पान कर लेनेवाली वा पचा लेनेवाली, स्वार्थ-परायण प्रवृत्ति पदार्थों को काला, कुरूप और अन्धकारमय बना देती है। इसके विपरीत प्रकाश की किरणों के रंगों को उदारता, निर्दोषिता और स्वतंत्रतापूर्वक त्याग देना पदार्थों को जगमग और सफेद बना देता है। सारे आकर्षणों और चुम्बकों का केन्द्र तथा घनीभूत पुंज 'सूर्य तो निरन्तर चारों ओर ताप और प्रकाश सतत बिखेरता रहता है।

बच्चे मधुर होते हैं 'क्योंकि उनमें सड़ी हुई संकुचित अहम भावना नहीं होती। जो कोई भी व्यक्ति हममें आत्मत्याग, स्वार्थ-हीन भक्ति का संस्कार पैदा करता है वही हमें बलात् मोहित और आकर्षित करता है। को हर एक व्यक्ति प्यार करता है। ऐ दार्शनिक वाद-विवाद और तर्क वितर्क परे हट जाओ। मैं तुमको जानता हूँ। सौंदर्य प्रेम

रूप है और प्रेम सौंदर्य रूप है। और दोनों ही त्याग हैं। इंग्लैंडवासी संन्यासी ई० कारपेन्टर के शब्दों में "जब तक आप अपनी बाबत सोचना कतई छोड़ नहीं देते, तब तक सुख नहीं मिल सकता, किन्तु अध-कचरे ढंग से काम नहीं चलेगा। यदि परिच्छिन्न भाव का एक जर्रा भी शेष रहता है, तो वही सब कुछ मटियामेट कर देता है। मैं यह नहीं कहता कि यह कठिन नहीं है किन्तु मैं जानता हूं कि दूसरा कोई चारा है नहीं।"

ऐ सजीव मनुष्य, तुझे प्रेम रूप होकर जीना ही श्रेयस्कर है। बुद्ध, ईसा एवं प्राचीन काल के स्वामियों और पथप्रदर्शकों के अपूर्व उदाहरणों के धोखे में मत पड़। "इतिहास, मनुष्य के संकल्प के आगे, एक ही व्यक्ति के संकल्प के सामने सिकुड़ने लगता है। काल और कार्य-कारण से मत डरो। प्रेम की मूर्ति होकर जियो, फिर सारे कानून तुम्हारी टहल करने लगेंगे। आन्तरिक शान्ति से एक स्वर हो जाओ और समय तुम्हारा साथ देगा।"

ओ घड़ी की नन्हीं-नन्हीं सुइयों ! तुम किन कठोर हाथों से संसार का शासन करती हो। अमर मनुष्य, तू क्षुद्रतम घड़ी की परिधि के संकीर्ण घेरे में शत्रु-भावना से दास बनाकर डाल दिया गया है। किस्मत की खूबी ! प्रकृति की घनरूपता और एकता के कानून में विश्वास न होने के कारण लोग भयभीत हो रहे हैं, कैसी नास्तिकता है ! क्या दूसरी देहों में कोई दूसरा निवास करता है। राम कभी घड़ी या घटाल नहीं रखता, किन्तु उसे कभी देर सवेर नहीं होती। समय तो स्वयं प्रेम की सहज उद्भावनाओं के साथ कदम मिलाने को बाध्य है। पवन-चक्की को ठीक-ठीक लगा दीजिये, चारों ओर की पवन अपने आप उससे मिल-जुलकर काम करेगी। इसी तरह प्रकृति भी आपसे आप तुम्हारे साथ मिली-जुली रहेगी। प्रेम में केन्द्रित होने पर सभी चमत्कार संभव हो जाते हैं।

हमारी मान्यताओं और आचरण पर देवता मन ही मन हँसते हैं। निज आत्म-रूप—निकटतम पड़ोसी के प्रति विश्वासघात करके अपने दूरस्थ पड़ोसियों के प्रति सच्चे रहने की चेष्टा में हम ऐसी उपहास्य प्रवंचनाओं में फँसे जाते हैं। एक दीन-हीन भिखारी किसी मकानमालकिन से रोटी माँगता है। बेचारी वृद्ध नारी! उस आवारे की स्वाधीनता से डाह करती है। पर्यटक के चले जाने पर अपने पति से बहाना करती है कि उसे अपनी माता का मृत्यु-सूचक पत्र मिला है। यह सोचकर कि शायद माँ हम लोगों के लिए कुछ सम्पत्ति छोड़ गई हो, पति उसे स्वर्ग सिधारनेवाली माता के घर शाम की गाड़ी से जाने की अनुमति दे देता है। महिला टिकट खरीदती है और दूसरे स्टेशन पर ही उतरकर लम्बी होती है। दीर्घकाल तक पिंजड़े की दुख-दायी कैद से छूटे हुए पक्षी की भाँति वह दौड़कर वन में पहुँचती है और जंगल में भरपेट हँसी हँसकर बहुत दिनों के थकानेवाले बोझ से मुक्ति का अनुभव करती है। बस, स्वच्छन्दतापूर्वक विचरने लगी, देहाती किसानों से भोजन खरीदा और शाम होने पर सूखी घास के ढेर के नीचे सो रही। दूसरे दिन सबेरे फिर उसने वही भ्रमण अपना जारी रखा और लो, वह क्या-सा विकट भयंकर शब्द उसके कानों में पड़ा, यह तो उसी कल वाले पर्यटक के साथ उस का पति घूम रहा है। वह भी शिष्टता के दुस्तर बोझ से उसी प्रकार दबा जा रहा था जैसे कि उसकी पत्नी। वह भी कुछ काल के लिए स्वच्छन्द आवारा छुट्टी के दिन बिताना चाहता था। किन्तु प्रेम-हीन कहे जाने के डर से दोनों में से कोई भी अपने हृदय की आवाज दूसरे पर प्रकट नहीं करता था। दूसरों को खुश करने के लिए इसी प्रकार की तकलीफें हम उठाते रहते हैं। अपने आपसे भी सच्चे रहो, और ठीक जिस तरह दिन के बाद रात होती है, उसी तरह तुम किसी दूसरे के प्रति झूठे नहीं हो सकोगे। प्रातः और सन्ध्या के विवेक की भाँति ज्ञान की

अस्वाभाविक जैसा हो जाता है, ज्यों ही उसे उन स्वभावों की गैरियत का ज्ञान करा दिया जाता है। जो कोई स्वतंत्र, अपनी आत्मा के प्रति सच्चा और दिव्य निर्द्वन्द्वता का जीवन व्यतीत करता है, उसके लिए संसार के सभी नियम, अपने-जैसे सच्चे हो जाते हैं। वह किसी से भी घृणा नहीं करता। वह किसी से झिझकता भी नहीं। वह किसी से डरता भी नहीं।

रोग क्या है? प्रेमाभाव के कारण संकुचित हो जाना, प्रतिच्छायाओं की फटफटाहट से थर्राना, विघ्नबाधाओं के दिवा-स्वप्नों से भयभीत होना। वास्तव में डरने की कोई बात ही नहीं है। चारों ओर, अनन्त भविष्य में, सम्पूर्ण देश में, केवल एक ही परम आत्मा का अस्तित्व है, और वह मेरा अपना आप है। फिर डर किसका हो? रात उतनी ही अच्छी है, जितना दिन। तूफान उतना ही ज़रूरी है जितना सूर्य-प्रकाश। प्रायः सारी रातें बिना पलकें गिराये बीत जाती हैं, तथापि राम दिन में सदा की भाँति प्रफुल्लित रहता है? क्योंकि क्लांति तो नींद के लिए परेशान होने के कारण होती है, निद्रा का अभाव उतनी क्लांति कभी नहीं करता। उन जागरणों में कैसा मज़ा आता है जब प्रेम की प्रेरणा से हम रात-रात भर सो नहीं पाते! जब शरीर-यंत्र को भोजन की हार्दिक चाह होती है तभी भोजनों में आनन्द आता है, किन्तु कभी-कभी भोजन में अरुचि हो जाने से क्या उपवास में भी वैसा ही आनन्द नहीं आता। अश्रुओं के धारा प्रवाह से आनन्द की बाढ़ सी आती है, जब कि उस प्रचंड अश्रु वर्षा पर प्रेम की सवारी होती है। हँसी की फुहारों में कोई रुकावट नहीं होती, किन्तु अश्रु-आनन्द हँसी के इस स्वच्छंद सुख से रत्ती भर घट-बढ़ नहीं होता। फिर मैं किसका प्रतिरोध करूँ, किससे बचने की चेष्टा करूँ, जब सब कुछ मैं ही हूँ? ओह! कैसी पूर्ण निर्द्वन्द्वता है!

बुखार आने पर मैं विकल नहीं होता, वरन् उसका स्वागत

करता हूं और उस समय ऐसे आध्यात्मिक तत्व चमक उठते हैं जो अन्यथा कभी प्रकट नहीं हो सकते थे। हर एक दशा स्वास्थ्य रूप है। जागरण एक प्रकार की तंदुरुस्ती है, निद्रा दूसरी प्रकार की। कोमल शान्ति तो रमणीय होती है, किन्तु उष्ण ताप के वेग का मजा भी निराला होता है। सच्चे धर्म का अर्थ पहले भलाई में विश्वास करना है, बाद में ईश्वर में। ऐसा तूफान आज तक आया ही नहीं, जो स्वस्थ और निर्दोष कानों को पवन के संगीत जैसा मधुर न जान पड़ा हो।

मेघों की गड़गड़ाहट के गंभीर नाद से इसी तत्व की घोषणा कर—जब तक बाहरी प्रतिबन्ध और आज्ञा-सूचक आदेश का लेशमात्र 'तू यह कर, तू यह न कर' का चक्र चलेगा तब तक आध्यात्मिक उन्नति अथवा सच्ची पवित्रता के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। आज्ञा-वृत्ति, मध्यम पुरुष, हमारे परिमित व्यक्तित्व को बराबर जाग्रत् रखता है, और जहाँ कहीं परिच्छिन्नता होती है, वहाँ आनन्द नहीं होता, न राग और द्वेष से छुटकारा मिलता है, और न आसक्ति और घृणा से मुक्ति मिलती है। ऐसी स्थिति में प्रलोभन तथा चंचलता से भी छुट्टी नहीं होती। जब तक दूसरे पिंडों से घिरा हुआ यह पिंड एक देश विशेष में स्थित रहता है तब तक वह गुरुत्वाकर्षण को झाँसा क्यों कर दे सकता है, आकर्षण और विकर्षण के नियमों के नेत्रों में धूल कैसे झोंक सकता है, प्रकृति को चकमा कैसे दे सकता है और बाहरी प्रभावों से क्योंकर बच सकता है। विभिन्न इन्द्रियों के कर्मों में स्पष्ट भेद होते हुए भी, मनुष्य अपने अकेले एक शरीर के सम्बन्ध में आत्मा की एकता (चेतना) का अनुभव करता रहता है, वही 'मैं' देखती है, सुनती है, चलती है, अनेक कर्म करती है। इसी तरह जीवनमुक्त सारे संसार के सम्बन्ध में विश्व-आत्मा की एकता की चेतना में निवास करता है। उसे भेद-भावों से सरोकार नहीं रहता जैसे एक ही शरीर में भोजन का परिपाक, बालों का बढ़ना इत्यादि, क्रियायें अपनी फ़िक्र आप ही कर लेती हैं। ५५

अस्वाभाविक जैसा हो जाता है, ज्यों ही उसे उन स्वभावों की गरिमा का ज्ञान करा दिया जाता है। जो कोई स्वतंत्र, अपनी आत्मा के प्रति सच्चा और दिव्य निर्द्वन्द्वता का जीवन व्यतीत करता है, उसके लिए संसार के सभी नियम, अपने-जैसे सच्चे हो जाते हैं। वह किसी से भी घृणा नहीं करता। वह किसी से झिझकता भी नहीं। वह किसी से डरता भी नहीं।

रोग क्या है ? प्रेमाभाव के कारण संकुचित हो जाना, अनिच्छाओं की फटफटाहट से थर्राना, विघ्नबाधाओं के दिवा-स्वप्नों से भयभीत होना। वास्तव में डरने की कोई बात ही नहीं है। चारों ओर, अनन्त भविष्य में, सम्पूर्ण देश में, केवल एक ही परम आत्मा का अस्तित्व है, और वह मेरा अपना आप है। फिर डर किसका हो ? रात उतनी ही अच्छी है, जितना दिन। तूफान उतना ही ज़रूरी है जितना सूर्य-प्रकाश। प्रायः सारी रातें बिना पलकें गिराये बीत जाती हैं, तथापि राम दिन में सदा की भाँति प्रफुल्लित रहता है ? क्योंकि क्लाँति तो नींद के लिए परेशान होने के कारण होती है, निद्रा का अभाव उतनी क्लांति कभी नहीं करता। उन जागरणों में कैसा मजा आता है जब प्रेम की प्रेरणा से हम रात-रात भर सो नहीं पाते ! जब शरीर-यंत्र को भोजन की हार्दिक चाह होती है तभी भोजनों में आनन्द आता है, किन्तु कभी-कभी भोजन में अरुचि हो जाने से क्या उपवास में भी वैसा ही आनन्द नहीं आता। अश्रुओं के धारा प्रवाह से आनन्द की बाढ़ सी आती है, जब कि इस प्रचंड अश्रु वर्षा पर प्रेम की सवारी होती है। हँसी की फुहारों में कोई रुकावट नहीं होती, किन्तु अश्रु-आनन्द हँसी के इस स्वच्छंद सुख से रत्ती भर घट-बढ़ नहीं होता। फिर मैं किसका प्रतिरोध करूँ, किससे बचने की चेष्टा करूं, जब सब कुछ मैं ही हूं ? ओह ! कैसी पूर्ण निर्द्वन्द्वता है!

बुखार आने पर मैं विकल नहीं होता, मित्रवत् उसका स्वागत

अस्वाभाविक ऊँचा हो जाता है, ज्यों ही उसे उन स्वभावों की गंभीरता का ज्ञान करा दिया जाता है। जो कोई स्वतंत्र, अपनी आत्मा के प्रति सच्चा और दिव्य निर्द्वन्द्वता का जीवन व्यतीत करता है, उसके लिए संसार के सभी नियम, अपने-ऊपने सच्चे हो जाते हैं। वह किसी से भी घृणा नहीं करता। वह किसी से झिझकता भी नहीं। वह किसी से डरता भी नहीं।

रोग क्या है? प्रेमाभाव के कारण संकुचित हो जाना, प्रतिच्छायाओं की फड़फड़ाहट से घबराना, चिन्ताधाराओं के दिवा-स्वप्नों से भयभीत होना। वास्तव में डरने की कोई बात ही नहीं है। चारों ओर, अनन्त भविष्य में, सम्पूर्ण देश में, केवल एक ही परम आत्मा का अस्तित्व है, और वह मेरा अपना आप है। फिर डर किसका हो! रात उतनी ही अच्छी है, जितना दिन। तूफ़ान उतना ही ग़ज़ब है जितना सूर्य-प्रकाश। प्रायः सारी रातें बिना पलकें गिराये बीत जाती हैं, तथापि राम दिन में सदा की भाँति प्रफुल्लित रहता है? क्योंकि क्लांति तो नींद के लिए परेशान होने के कारण होती है, निद्रा का अभाव उतनी क्लांति कभी नहीं करता। उन जागरणों में कैसा मज़ा आता है जब प्रेम की प्रेरणा से हम रात-रात भर सो नहीं पाते! जब शरीर-यंत्र को भोजन की हार्दिक चाह होती है तभी भोजनों में आनन्द आता है, किन्तु कभी-कभी भोजन में अरुचि हो जाने से क्या उपवास में भी वैसा ही आनन्द नहीं आता। अश्रुओं के धारा प्रवाह से आनन्द की याद भी आती है, जब कि उन प्रचंड अश्रु वर्षा पर प्रेम की सवारी होती है। हँसी की फुहारों में कोई रुकावट नहीं होती, किन्तु अश्रु-आनन्द हँसी के इस स्वच्छंद सुख से रत्ती भर घट-बढ़ नहीं होता। फिर मैं किसका प्रतिरोध करूँ, किससे बचने की चेष्टा करूँ, जब सब कुछ मैं ही हूँ? ओह! कैसी पूर्ण निर्द्वन्द्वता है!

बुखार आने पर मैं विकल नहीं होता, मित्रवत् उसका स्वागत

अनन्त स्वरूप के अनुभव द्वारा ही, सम्पूर्ण भेद-भावों को जीत कर ही, सर्व के साथ अपनी एकता का अनुभव करने पर ही नक्षत्रों, भूभागों, नदियों आदि सबको अपना ही आप अनुभव करने तथा प्रेम के द्वारा सबको अपनाने ही से हम प्रलोभनों को पूर्ण रूपेण जीत सकते हैं।

प्रचण्ड मार्तण्ड की जगमगाहट में जुगनूं क्या प्रकाश डाल सकती है ? जब सभी मेरे लिए सौन्दर्य रूप हैं, मैं स्वयं सौन्दर्य हूँ, तब मैं किसके पीछे दौड़ूँ ? दुनिया की सम्पत्तियों की सम्पूर्ण तालिका में कौन-सी वस्तु ऐसी है, जो उस मनुष्य को आकर्षित करे, जिसने समस्त आकर्षक पदार्थों से पहले ही अभेदत्व प्राप्त किया है ?

ऐसा मक्खीचूस चोर कौन-सी दुष्टता नहीं करेगा अथवा नहीं की है, जो अपने को ईश्वर से भिन्न समझता हुआ प्रकाशों के प्रकाश आत्मदेव को मिथ्यावाद के गड्ढे में छिपाना चाहता है—अर्थात् परम आत्मा के साथ मिथ्याचार करता हुआ आत्म-हन्ता बनता है ?

No physical action, good or evil,
No mental action, virtuous or ill,
No shame or fame, no praise or blame
Could taint me e'er, no kind of game.
Nothing but the flood of glory !
To whom shall I give thanks,
To whom shall I turn and look up,
When Bliss absolute,
When Light immeasurable is manifest even in me?

कोई शारीरिक कर्म, बुरा या भला,
कोई मानसिक कर्म, नेक या बद,
कोई यश या अपयश, कोई प्रशंसा या निन्दा,
किसी प्रकार का खेल, मुझे मलिन नहीं कर सकता,
गौरव की बाढ़ है यह !

करते ही प्रेमी लोगों के हृदय दिव्य ज्योति के स्थान पर कामुकता और पशुता का उद्रेक होने लगता है। कभी-कभी लोग ईश्वरीय प्रेम, भक्ति और उपासना के बारे में लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। किन्तु इनका व्यावहारिक रूप होता है केवल कुछ संस्कृत-गीतों का जोर-जोर से गाना अथवा कुछ मंत्रों को जपना। भाव-ग्रहण की तो चर्चा ही क्या, वे ठीक से समझते ही नहीं कि कह क्या रहे हैं। बिना बारूद की खाली गोलियाँ! चैतन्य महाप्रभु के सच्चे दीन हृदय की जाली नकल!

मन्दिरों से प्रायः देशी-भाषा के भजन सुनाई पड़ते हैं, जिन्हें गानेवाले अपने योग्यतानुसार उत्तम संगीत के साथ गाते हैं, किन्तु ओ मेरे प्यारे! उसके साथ हृदयों को पवित्र करनेवाले प्रेमाश्रु की बूंद क्यों नहीं बर्षाते!

ओ भाग्यवान् हिन्दुस्थानियो! तुम परमेश्वर को उल्लू नहीं बना सकते, न अपने आप को पापी और दास कहकर उसका प्रेम जीत सकते हो। जैसा तुम सोचोगे ठीक वैसे ही बन जाओगे, फिर बन जाओगे। कर्म का निष्ठुर नियम दुराग्रह के साथ चलता है। जब तुम इस प्रकार की प्रार्थना करोगे तो वह तुम्हें अवश्यमेव पापी और गुलाम बना देगा। यह तो भक्ति नहीं है!

मेरे ऐ दीनहृदय श्रीमान! ऊँचे ऊँचे श्वेत मन्दिरों और पाषाण विष्णुओं का निर्माण तुम्हारे हृदय के ज्वर को शान्त नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, तुम दुखी हो। तुम्हारा अभिमान भले ही इसे स्वीकार न करे। देश के भूखे नारायणों और श्रमजीवी विष्णुओं की पूजा करो। भारत के गरीब विद्यार्थियों को उपयोगी कलायें और उद्योग-धन्धे सीखने के लिए अमेरिका भेजो। भारत लौटने पर वे सैकड़ों, वरन् सहस्रों भूखे लोगों को स्वावलम्बी बनाकर बचा सकेंगे।

एक सज्जन ने निज़ामी रचित "लैली और मजनू" पुस्तक पढ़कर लैली का चित्र पुस्तक से फाड़ लिया, और उसे अपनी छाती से चिपकाए

And a vision without bound ;
 The axis of those eyes sun-clear
Be the axis of the sphere

(Emerson)

किन्तु परमेश्वर ने कहा,
'मैं पवित्रतम भेंट लूँगा,
ज्वाला में तो धुँआ है।'
प्यारी आँखों में भीतर, गहरे में,
ज्वालामय मधुर प्रतिभालोक पड़ता है ;
और स्वर्ग है वह बिन्दु
जहाँ उनकी नजरें मिलती हैं।
उनकी पहुँच और भी अधिक गम्भीर होगी
और दृश्य जिसकी सीमा न होगी,
उन सूर्य-परिष्कृत नयनों की धुरी
व्योम-मंडल की धुरी होगी। (इमर्सन)

ओ पहाड़ों को धाराओ! गरजो, खूब गरजो! ऐ समुद्र, तू भी गरज! ऐ मृत्यु की खाई! तू भी पीतवर्ण नक्षत्रों के नीचे प्रचार कर। और कृष्णवर्ण धरातल पर खूब जम्हाइयाँ ले। किन्तु ओह मेरे महान् हृदयेश्वर! मैं जानता हूँ कि जंगलों में, पहाड़ों और समुद्रों पर, ऋतु की काली दरारों पर प्रतिच्छाया की सी शीघ्रता से, तू ही, ऐ मेरे प्रेम प्रभु! तू ही सवारी करता है, और भूखी हवायें और लपलपाती लहरें तो तेरे ही शिकारी कुत्ते हैं। ऐ निर्दय सत्य! तू नित्य ही शिकार करता रहता है।

गैलीली (Galilee) में साँझ के समय, प्रभु उन्हें, अपने शिष्यों को श्रम करते हुए, रोते-झींकते हुए, रस्सी को समेटते और जल्दी-जल्दी खेते हुए देखा, क्योंकि वायु उनके प्रतिकूल थी। किन्तु 'स्वामी' के

And a vision without bound ;
The axis of those eyes sun-clear
Be the axis of the sphere.

(Emerson)

किन्तु परमेश्वर ने कहा,
'मैं पवित्रतम भेट लूँगा,
ज्वाला में तो धुँआ है।'
प्यारी आँखों में भीतर, गहरे में,
ज्वालामय मधुर मदियातेज बहता है ;
और स्वर्ग है वह बिन्दु
जहाँ उनकी नजरें मिलती हैं।
उनकी पहुँच और भी अधिक गम्भीर होगी
और दृश्य जिसकी सीमा न होगी ,
उन सूर्य-परिष्कृत नयनों की धुरी
व्योम-मंडल की धुरी होगी। (इमर्सन)

ओ पहाड़ों की धाराओ ! गरजो, खूब गरजो ! ऐ समुद्र, तू भी गरज ! ऐ मृत्यु की खाड़ ! तू भी पीतवर्ण नक्षत्रों के नीचे प्रचार कर। और कृष्णवर्ण धरातल पर खूब जम्हाइयाँ ले। किन्तु ओह मेरे महान हृदयेश्वर ! मैं जानता हूँ कि जंगलों में, पहाड़ों और समुद्रों पर, मृत्यु की काली दरारों पर प्रतिच्छाया की सी शीघ्रता से, तू ही, ऐ मेरे प्रेम प्रभु ! तू ही सवारी करता है, और भूखी हवायें और लपलपाती लहरें तो तेरे ही शिकारी कुत्ते हैं। ऐ निर्दय सत्य ! तू नित्य ही शिकार करता रहता है।

गेलीली (Galilee) में साँझ के समय, प्रभु उन्हें, अपने शिष्यों को श्रम करते हुए, रोते झींकते हुए, रस्सी को समेटते और जल्दी-जल्दी खेते हुए देखा, क्योंकि वायु उनके प्रतिकूल थी। किन्तु 'स्वामी ई

चिह्न उनके चित्त हैं। किसी व्यक्ति से व्यवहार करते समय क्या तुमने कभी इस बात की परवाह की कि वह तुम्हें उसी हाथ से वस्तु देता है जिस हाथ से उसने उसे लिया था? वह दूसरे हाथ से भी काम ले सकता है, इससे तुम्हें क्या? तुम्हारा ग्राहक हाथ नहीं है, वह तो है हाथों को चलानेवाला।

सुखी है वह, जो इस सारे संसार को एक स्वर्गीय उपवन में परिणत कर देता है, जो नर-नारियों की भीड़-भाड़ में भी उसी निरहंकार जीवन को श्वास-प्रश्वास लेता देखता है, जिसके द्वारा उपवनों के गुलाब और सिंदूर के वृक्ष अनुप्राणित होते रहते हैं।

प्रज्वलित विश्राम

ऐसा मालूम होता है कि नित्य-प्रति लाखों खनिज पदार्थ, पौधे और पशु हमारी निर्द्वन्द्व प्रकृति द्वारा व्यर्थ ही नष्ट कर दिये जाते हैं। कुछ परवाह नहीं, होने दीजिये। राम और प्रकृति घंटे-घंटे में करोड़ों जीवन और खजाने मजे में लुटा सकता है। वस्तु नष्ट होकर जायगी कहाँ? जहाँ कहीं भी जायगी, रहेगी तो मुझ ही में। प्राचीन भारत की अतुल सम्पत्ति जब तक भारत में थी तब तक मेरी बाईं जेब में थी, अब, जब इंग्लैंड को दौड़े जा रही है मेरी दाहिनी जेब में है। मैं हूँ महासागर, ज्वार और भाटा दोनों मुझी में हैं। द्वेष और प्रतिकार के भाव को पोषण करने से कोई हित न सरेगा। हित होगा अपना कर्तव्य प्रेम पूर्वक करने से। प्रेम सब पर विजयी होता है—यह नासमझी की धोखेवाली उक्ति नहीं। स्वामित्व लूट-खसोट के संग्रह द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। कपूर के एक छोटे से टुकड़े को भी तुम इस प्रकार आज्ञा देकर नहीं रख सकते कि ऐ कपूर, ठहरो, यहीं ठहरो, तुम मेरे अधिकार में हो। किन्तु प्रेम के द्वारा तुम सारे संसार को "अपना, बिलकुल अपना ही" बना सकते हो। केवल प्रेम ही के द्वारा न्यायसंगत स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है। और सब प्रकार का स्वामित्व चोरी, डकैती, ऊँची नियमों की हिंसा है, चाहे मनुष्य की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियां भले ही उसे न्यायपूर्ण मानने लगें।

उस अत्याचारी तैमूरलंग ने जिसने अपनी ईरान की विजय का उत्सव नब्बे हजार मनुष्यों के सिरों की मीनार से मनाया था, हाफ़िज़ को उसके प्रसिद्ध भजन के निम्न चरण के कारण अपने सामने उपस्थित होने की आज्ञा निकाली थी :—

परन्तु कुछ समय उसकी केन्द्रापगामी शक्ति या आकर्षण उन्हें उनसे गोलाकार चक्कर कटवाने लगती है, उन्हें मार्ग से दूर कर देती है, उन्हें धूमकेतु बना देती है जिससे वे विभिन्न सम्प्रदायों के घेरे में फँस जाते हैं। कुछ लोग वेदान्त मत के चारों ओर घूमते हैं। कुछ दूसरों के मंडल के चारों ओर निरत होते हैं। राम तो इस धार्मिक सूर्य मंडल का आनन्द लूटता है। किन्तु तारों का तेज खोजता और इस प्रकार से प्रकाश के विकर्षण लेना [उस] और यत्न करना कि [नि] निश्चित रूप से [यह] मेरा और तेरा, सम्पत्ति आदि के अधिकार के सब भावों को छोड़ करके शुद्ध सत् [या जीवन] को प्रकाशों के प्रकाश (उपनिषद्) में मग्न कर दे और तत्त्वमसि, तू वह है हो जाय।

ओ सभ्यता के वासियो! तुम कुशल विज्ञानों और कलाओं का आदर करते हो, किन्तु क्या इनको उन्हें बहुत अधिक महत्व न दो। प्रेम स्वरूप प्रभु ही वह सूर्य है जिसके इर्दगिर्द समाज के विज्ञानों को ग्रहों और उपग्रहों की तरह चक्कर काटना चाहिए।

भूगर्भ-विद्या मनुष्य से दूर रहनेवाले खनिज पदार्थों और पत्थरों का ऊहापोह करती है। वनस्पति-विद्या का सम्बन्ध खनिजों से कुछ ऊँचे विषयों से है। ज्योतिष आकाश के नक्षत्रों का वर्णन करता है। शरीर-रचना-शास्त्र मनुष्य की हड्डियों, बाहरी ढाँचे का अध्ययन करती है। मनोविज्ञान केवल मन की विभिन्न क्रियाओं का वर्णन करता है। किन्तु प्रेम तो मनुष्य और प्रकृति में विद्यमान सत्य से सत्य तत्त्व का निरूपण है। वह विज्ञान भी है और कला भी। वर्तमान वैज्ञानिक अविष्कार तो उस महान् सूर्य, प्रेमाग्नि ऐक्य भावना की चिनगारियाँ-स्फुल्लिंग मात्र हैं।

बालक फ्रैंकलिन पतंग उड़ा रहा था, और उसका पिता बेंजमिन डोर को पार करनेवाली चुम्बकीय सुई देख रहा था। देखो, इस सनक

उसका शरीर कैसा अचल, अचंचल हो रहा है! जिस पृथिवी पर उसका शरीर टिका हुआ है, उसकी हस्ती उससे किसी तरह अलग नहीं जान पड़ती? अपने आस-पास की वस्तुओं से वह बिलकुल एक हो गया है! जैसे एक शिला हो। उसका अन्तः करण प्रकृति की श्वास-प्रश्वास के साथ धड़क रहा है। बस, प्रकृति के रहस्य उसके रहस्य बन गये हैं। आकाश की बिजली पृथिवी पर के विद्युत् स्फुलिंग से अभेद सिद्ध हो रही है। बाह्य प्रकाश आन्तरिक प्रकाश से अपनी एकता प्रकट करता है।

प्रेम या ऐक्य भावना जब दो मनुष्यों के बीच काम करने लगती है, तब भेद-भाव की माया छिन्न-भिन्न हो जाती है। एक की भावनायें दूसरे की भावनायें हो जाती हैं। एक के सीने में जो हलचल होती है वही दूसरे वक्षस्थल में प्रस्फुटित होती है, और दिव्य दृष्टि सिद्ध बात बन जाती है, हमें उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

"निस्सन्देह मैं ही इस सब में व्याप्त हूँ, जैसे एक ही डोरे में माला के अनेक दाने पिरोये होते हैं।"

Whatever thou lovest, man,
 Thou too become that must;
God, if thou lovest God,
 Dust, if thou lovest dust.

मनुष्य, जिसे तू प्यार करता है,
वही तू अवश्य बन जायगा।
ईश्वर यदि तू ईश्वर से प्रेम करता है,
खाक, यदि तू खाक को प्यार करता है।

ओ! अपने ही हृदय को खाना, कैसा स्वादिष्ठ, कैसा सुन्दर भोजन है, कैसा धन्य भोजन है! इतनी स्वादिष्ठ तो और कोई चीज नहीं! हाँ, राम के लिए दूध कभी-कभी इसका अच्छा साथी बन जाता है।

The moon is up, they see the moon.
  I drink Thine eyebrow's light.
Big fair they hold, full crowded soon.
  I watch and watch Thee, source of light.
Nay, call no surgeons, doctors, none,
  For me pain is all delight.
Adieu, ye citizens, cities, good bye!
  Oh welcome, dizzy, ethereal heights!
O fashion and custom, virtue and vice,
  O laws, convention, peace and fight,
O friends and foes, relations, ties,
  Possession, passion, wrong and right,
Good bye, O Time and Space, Good bye,
  Good bye, O World, and Day and Night.
My love is flowers, music, light,
  My love is day, my love is night.
Dissolved in me all dark and bright.
  Oh, what a peace and joy!
Oh, leave me alone, my love and I,
  Good bye, good bye, good bye.

चन्द्र निकला है, वे चन्द्रमा देखते हैं!
ऐ प्रेम स्वरूप प्रभु! मैं तो तुम्हारी भृकुटि की ज्योत्स्ना पीता हूँ।
बड़ा मेला उन्होंने लगा रखा है, खचाखच भीड़ हो गई।
पर ऐ प्रकाशों के मूल मैं तो तुझे ही निरखता और देखता हूँ।
नहीं, किसी जर्राह, वैद्य, हकीम को मत बुलाओ,
मेरे लिए मेरा दर्द ही पूर्णतः हर्ष है।
ऐ नागरिको, नमस्कार! नगरो, प्रणाम!
ओ चक्करानेवाली, आकाशीय ऊँचाइयो! स्वागत,

This is the last we tell;
The hairs do stand at end.
The throat is choked, Oh friend.

स्वागत है तुम्हारा इस चमकीली दुनिया में,
ईश्वर के सुन्दर दर्शन—हमारे स्वागत के लिए हैं!
किन्तु खूब याद रक्खो,
यह हमारा अन्तिम कहना है,
लो, रोमाञ्च हो रहा है,
गला रुका जाता है, ऐ मित्र!

विभिन्न पदार्थ—बड़े-छोटे, भले-बुरे, कुरूप और मनोहर—सबके सब उस सजीवन प्रेमी के लिए विचित्र रेखाचित्र के समान हैं, सभी एक ही प्रेम को सूचित करते हैं, सुन्दर-सुन्दर अक्षर और सब का एक ही अर्थ—मेरा ही अपना आप, उत्तम और उत्कृष्ट चित्र सबके सब प्रियतम प्रभु को दर्शाने वाले सौंदर्य के भिन्न-भिन्न परिधान—सभी उसी प्यारे, आत्मा की भिन्न-भिन्न वेष-भूषायें! ओह! चारों ओर सौंदर्य का महासागर, प्रेम का रत्नाकर फैला हुआ है! प्रेमी के लिए तो प्रेमपात्र की काली काकुलें उतनी ही मन-मोहक हैं जितना गोरा मुखड़ा। सो राम को रात भी उतनी प्यारी है जितना दिन, मृत्यु उतनी ही मधुर है जितना जीवन, ज्वर भी उतना ही अभिनन्दनीय जितना स्वास्थ्य, शत्रु उतने ही प्यारे जितने मित्र।

कितना धन्य है वह जिसकी सारी सम्पत्ति चोरी चली गई? वह और भी अधिक धन्य है, जिसकी स्त्री भाग गई कब? जब इन बातों से साक्षात्-प्रेमरूप प्रभु से उसका प्रत्यक्ष संसर्ग हो जाय। मुसलमानों की पौराणिक गाथाओं के अनुसार, इब्राहीम ने एक बार समुद्रयात्रा की इच्छा की। हजरत खिज्र, या नेपट्यून नाविक की भाँति उनकी सेवा करने के लिए तत्पर हुए। पहले पहल इब्राहीम ने मूर्खता से

इसे अपनी भेंट होने दो।
मेरा हृदय ले लो, और हे प्रेम-प्रभो!
अपने प्रेम से परिपूर्ण होने दो।
मेरे नयन ले लो, और उन्हें, हे प्रभो!
अपने दर्शन से उन्मत्त, हो जाने दो।
मेरे हाथ ले लो, और उन्हें, हे प्रभो!
सत्य की खोज में पसीना-पसीना होने दो!

प्यारे भाग्यवान् पाठक! क्या तुम्हें कभी प्रेम में नष्ट होने, नहीं, नहीं, प्रेम में स्वार्थ शून्य होकर प्रेम में ऊँचे उठने का, प्रेम देव को सर्वस्व भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है? हुआ है, तो तुम निम्नांकित भावों का रस ले सकोगे—

"Soft skin of Taif for thy sandals take,
And of our heart string fitting latchets make,
And tread on lips which yearn to touch those feet."
"O my blessed Lord, accept me as the most humble slave of feet."

ऐ मेरे प्रभु! तैफ़ के कोमल चर्म से आप अपने लिए पादुकायें बनाओ, और हमारे हृदय-तंत्रियों से उपयुक्त डोरियाँ और उन होठों पर चलो जो आपके चरणों को छूना चाहते हैं। ऐ मेरे महाप्रभु, चरणों के अत्यन्त विनीत सेवक मुझ को स्वीकार करो।

है कोई काम ऐसा जिसे प्रेम धन्य और सुन्दर नहीं बना सकता?

प्रभु जी! मैं चरणों की दासी।

जहाँ प्रेम हो, वहाँ न कोई बड़ा है, न कोई छोटा, न कोई नीचा, न कोई ऊँचा। प्रेम भावना की प्रेरणा से कड़ा काम स्वर्ग-सुख-दायक बन जाता है। स्वार्थपरता ऊँचे से ऊँचे पद को भी अत्यन्त कष्टप्रद और अशान्तिकर बना देती है। जीवन में तुम्हारी चाहे जैसी स्थिति

इसे अपनी भेंट होने दो।
मेरा हृदय ले लो, और हे प्रेम-प्रभो!
अपने प्रेम से परिपूर्ण होने दो।
मेरे नयन ले लो, और उन्हें, हे प्रभो!
अपने दर्शन से उन्मत्त, हो जाने दो।
मेरे हाथ ले लो, और उन्हें, हे प्रभो!
सत्य की खोज में पसीना-पसीना होने दो!

प्यारे भाग्यवान् पाठक! क्या तुम्हें कभी प्रेम में नष्ट होने, नहीं, नहीं, प्रेम में स्वार्थ शून्य होकर प्रेम में ऊँचे उठने का, प्रेम देव को सर्वस्व भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है? हुआ है, तो तुम निम्नांकित भावों का रस ले सकोगे—

"Soft skin of Taif for thy sandals take,
And of our heart string fitting latchets make,
And tread on lips which yearn to touch those feet,"
"O my blessed Lord, accept me as the most humble
slave of feet"

ऐ मेरे प्रभु! तैफ के कोमल चर्म से आप अपने लिए पादुकायें बनाओ, और हमारे हृदय-तन्त्रियों से उपयुक्त डोरियाँ और उन होठों पर चलो जो आपके चरणों को छूना चाहते हैं। ऐ मेरे महाप्रभु, चरणों के अत्यन्त विनीत सेवक मुझ को स्वीकार करो।

है कोई काम ऐसा जिसे प्रेम धन्य और सुन्दर नहीं बना सकता?

प्रभु जी! मैं चरणों की दासी।

जहाँ प्रेम हो, वहाँ न कोई बड़ा है, न कोई छोटा, न कोई नीचा, न कोई ऊँचा। प्रेम भावना की प्रेरणा से कड़ा काम स्वर्ग-सुखदायक बन जाता है। स्वार्थपरता ऊँचे से ऊँचे पद को भी अत्यन्त कष्टप्रद और क्लान्तिकर बना देती है। जीवन में तुम्हारी चाहे जैसी स्थिति

They cannot cool my burning love
Or quench my soul's desire.
Then wake, awake!
हिमालय की बर्फ को देखो नहीं ?
जो पड़ी है और कभी गलती नहीं ?
पर वह भी मेरा प्रज्वलित प्रेम शीतल नहीं कर सकती।
और न मेरी आत्मा की आकांक्षा को बुझा सकती है।
तब जागो, जागो !

Dost hear the Ganges river,
Its sacred waters roll ?
But deeper flows for ever,
The passion of my soul.
Then wake ! awake !
गंगा नदी के कलरव को सुनते नहीं ?
उसका पुण्य-सलिल कितना मनोहर बहता है !
किन्तु जो धारा सदा उससे भी अधिक गंभीर बहती है,
वह है मेरे चित्त की उत्कट उत्कंठा !
तो जागो, जागो !

LUDICROUS FRIGHT

They say it was a penniless lad
And nothing nothing to lose he had.
He heard that thieves were at him still,
They must pursue, go where he will,
Thus haunted, worried, he for escape
Ran uphill, down ditch, into the cape -
He hurried and flurried in fear and fright,
Wore out his body, and mind in flight,

शोपेनहार का वचन है, "अपने आप में आनन्द प्राप्त करना कठिन है, पर उसे कहीं अन्यत्र प्राप्त करना तो असम्भव है।"

चातुर्यपूर्ण क्षुद्र अह के रहते हुए भी सभी बड़े कार्य अकर्तृत्व भाव में ही सम्पन्न होते हैं, उनमे क्षुद्र अहं का हाथ नहीं होता। सूर्य तो केवल निष्काम साक्षी के रूप में अपने स्वाभाविक प्रकाश से चमकना आरम्भ करता है। और लो! नदियाँ अपने हिमाच्छादित निवास से निकल पड़ती हैं। हवा के झोंके प्रसन्नता से नाचने लगते हैं, सारी प्रकृति गतिशील हो जाती है। पशु जाग उठते हैं, पौधे बढ़ने लगते हैं, गुलाब और कमल खिल उठते हैं। यही नहीं, नर-नारी और बच्चों के नेत्ररूपी चमकदार पुष्प भी सूर्य के प्रचण्ड प्रताप की उपस्थिति मात्र से खिल जाते हैं।

ऐ आनन्दमय आत्मन्! तुम्हे केवल सबकी आत्मा, प्रकाश के स्रोत, हर्ष के निर्झर की भाँति चमकना भर है। और फिर तेज, जीवन, और गति अपने आप भीतर से फूटने लगेगी। फूल खिलता है और सुगंधि स्वतः फैलने लगती है।

तैरने की कला को न जाननेवाला यदि कोई मनुष्य सयोग से झील में गिर पड़े, तो पानी स्वतः उसे ऊपर उछाल देता है, परन्तु घबराहट के मारे बेतहाशा हाथ-पैर मारने से वह फिर डूब जाता है। इसी तरह अशान्त और चिन्ताओ से प्रयत्नशील क्षुद्र अह-भाव ही मनुष्य को डुबानेवाली भँवर है। देखिये, जलाल-ए-रूमी कहता है—

"Heavenly manna was showered daily to thee
Israelites in the forest, but
Some graceless scoffers out of Moses' host
Dared to demand the onions,
And manna was lost"

इसराइलियो के लिए जगल मे नित्य,
—स्वर्गीय भोजन की वर्षा होती थी।

We rest on God's infinity,
　　On bliss that circles stars and suns,
Says the Brahmacharin of America (Thoreau)
"Whate'er we leave to God, God does
　　And blesses us.
The work we choose sh'd be our own
　　God leaves alone"

चिड़ियों के समान जो समुद्र पर सोते हैं,
जिन्हें खबर नहीं कि धारा कहाँ से बहती है,
वह तो उस अनन्त परमेश्वर और उसके आनन्द पर
विश्राम करते हैं जो नक्षत्रों और सूर्यों को घेरे हुए है।
अमेरिका का ब्रह्मचारी थोरो कहता है—
"जो कुछ हम ईश्वर पर छोड़ते हैं, उसे ईश्वर स्वयं पूरा करता
और हमें आशीर्वाद देता है;
जो काम हम अपने लिए चुनते हैं कि हमारा निजी होना चाहिए,
उसे ईश्वर अलग रख देता है।

कष्ट और पीड़ा क्या है? अपने आपको देही भान करना, अवस्थाओं तथा परिस्थितियों का गुलाम मानना। अपने आपको पृथक समझने वाले इन नास्तिकतापूर्ण भावों को उतार फेंको। यदि बाह्य प्रकृति की शासक आत्मा तुम्हारी निजी अभ्यन्तर आत्मा से भिन्न हो तो फिर तुम्हारे लिए हाथ मलने, सिर पटकने और अन्त में नष्ट होने के सिवाय और कोई उपाय शेष नहीं बचता। परन्तु सत्य यह है कि एक ओर तुम्हीं परिस्थितियों से घिरे हुए मालूम होते हो और दूसरी ओर तुम्हीं उन परिस्थितियों और अवस्थाओं में प्रकट होते हो। रुपया मुझ में (मेरे हाथ में) है और मैं रुपया में हूँ।

"I heard a knock—a hard blow
　　On my door and cried I "Who is it? Ho!"

का अनुभव करो और अनुभव करो तो तुम देखोगे कि सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारे शरीर की भाँति काम करती है। ऐ मायागुप्त अमर तुम! सोना और चाँदी तेरे जीवन का मोल नहीं कर सकते। तू तो है वह, जो नक्षत्रों को प्राण, सोने और चाँदी को चमक, और सूर्य तथा तारों को प्रकाश उधार देता है।

लोग इस गति से उन्नति क्यों नहीं करते, क्योंकि बाहरी सम्मतियों, विचार-धाराओं का बड़ा भारी बोझ महान् हिमालय की तरह उनकी पीठ पर, नहीं, छाती पर लदा रहता है जिससे वे एक पग भी आगे नहीं बढ़ने पाते। अन्धविश्वास और विश्वासों से, परिच्छिन्नताओं से अपने आपको मुक्त करो। तुम्हारे निज में ऐसी शिरका (शराब) होना चाहिए कि उसमें पड़ते ही दुनिया गल जाय।

विश्व के गलते रहने पर भी ज्ञान (आत्मज्ञान) की सार्वभौमिक धारा में भी उसकी ज्योति सदा पारदर्शक रहती है। ठीक तरह से विचार करो, फिर चाहे आसमान गिर या पृथ्वी फटे, तुम्हारी उन्नति का संगीतमय पथ बराबर खुला ही रहेगा। न कोई शत्रु कभी तुम्हें देखेगा और न तुम उसको। तुम उस स्थिति में शत्रु का खयाल तक नहीं कर सकते।

संगीत में विभिन्न स्वर एक नियमित क्रम से (कारण और कार्य की तरह) एक दूसरे के आगे-पीछे आते-जाते हैं, किन्तु केवल स्वरों की परीक्षा और तुलना से स्वर-साम्यता समझ में नहीं आती। वह स्वरसाम्यता तो अनुभव सिद्ध होती है, वह स्वरों और हमारी उन गंभीरतम भावनाओं के पारस्परिक सम्बन्ध पर अवलम्बित है, जो उस गान की प्रेरक होती हैं, उस गान को धारण करती हैं, और उनका मूल और अन्तिम परिणाम होती हैं, वही उस स्वरसाम्यता की असली जान हैं।

इसी प्रकार प्रकृति के ऊपरी नियमों और बाह्य हेतुओं के ऊहापोह

से प्रकृति की व्याख्या नहीं होती, किन्तु उसको 'मनुष्य-शरीर जैसा बनाये जाने पर' ही वह समझ में आती है। दूसरे शब्दों में जब तक उसके साथ अपने शरीर-जैसा तदात्म भाव न होगा, तब तक वह पहचानी नहीं जा सकती।

जब तक तुम सबको अपना आप भान न करोगे, तब तक तुम सबको जान नहीं सकते। वास्तविक तथ्य में गोता लगाना, नालों और कुओं के नीचे की थाह लेना, वनों और उपवनों में, पहाड़ों और नदियों में, दिन और रात में, मेघों और नक्षत्रों में आज़ादी से विचरना, पुरुषों और नारियों में, पशुओं और फ़िरिश्तों में, हरेक की और सबकी आत्मा में निर्द्वन्द्व हो कर विचरना, यही जीवन है, यही आत्म-ज्ञान है, सच्ची बुद्धिमानी है।

"The whole world is bound to co-work with one who feels himself one with the whole world."

"जो समग्र संसार के साथ अपने को अभिन्न अनुभव करता है, समग्र संसार उसके साथ काम करने के लिए बाध्य है।

कारण जगत् में ज्ञान (सत्य का सजीव जीता-जागता ज्ञान) की उपलब्धि हो जाने पर यही ज्ञान आत्यन्तिक प्रेम की धार में परिणत हो जाता है। दूसरे शब्दों में सबके साथ और सारे जगत् के साथ अभिन्नता की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो आत्मकल्याण सूर्य की भाँति चिरन्तन आनन्द के रूप में फूट निकलती है, जहाँ यद्यपि फल की चेष्टा नहीं होती, पुरस्कार की इच्छा नहीं होती, और कोई कामना नहीं रहती (क्योंकि मानसिक लोक में यही ज्ञान त्याग के रूप में प्रकट होता है), तथापि स्थूल जगत् में अद्भुत तेज और शक्तिशाली कार्य की भाँति प्रादुर्भूत होता है।

इस लिए, ज्ञान का अनुभव कीजिये और प्रेम से कर्म के निरत होकर त्याग प्राप्त कीजिये।

का अनुभव करो और अनुभव करते ही तुम देखोगे कि सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारे शरीर की भाँति वर्ताव करती है। हे मायामुग्ध अमर पुरुष! सोना और चाँदी तेरे जीवन का बीमा नहीं कर सकते। तू तो है वह, जो प्राणों को प्राण, सोने और चाँदी को चमक, और सूर्य तथा नक्षत्रों को प्रकाश उधार देता है।

लोग द्रुत गति से उन्नति क्यों नहीं करते, क्योंकि बाहरी सम्मतियों, विचार-धाराओं का बड़ा भारी बोझ महान् हिमालय की तरह उनकी पीठ पर, नहीं, छाती पर लदा रहता है जिससे वे एक पग भी आगे नहीं बढ़ने पाते। अस्वास्थ्यकर अंध विश्वासों से, परिच्छिन्नताओं से अपने आपको मुक्त करो। तुम्हारे चित्त में ऐसी शिरका (शराब) होना चाहिए कि उसमें पड़ते ही दुनिया गल जाय।

विश्व के गलते रहने पर भी ज्ञान (आत्मज्ञान) की सार्वभौमिक धारा में भी उसकी ज्योति सदा पारदर्शक रहती है। ठीक तरह से विचार करो, फिर चाहे आसमान गिरे या पृथ्वी फटे, तुम्हारी उन्नति का संगीतमय पथ बराबर खुला ही रहेगा। न कोई शत्रु कभी तुम्हें देखेगा और न तुम उसको। तुम उस स्थिति में शत्रु का ख्याल तक नहीं कर सकते।

संगीत में विभिन्न स्वर एक नियमित क्रम से (कारण और कार्य की तरह) एक दूसरे के आगे-पीछे आते-जाते हैं, किन्तु केवल स्वरों की परीक्षा और तुलना से स्वर-साम्यता समझ में नहीं आती। वह स्वरसाम्यता तो अनुभव सिद्ध होती है, वह स्वरों और हमारी उन गंभीरतम भावनाओं के पारस्परिक सम्बन्ध पर अवलम्बित है, जो उस गान की प्रेरक होती हैं, उस गान को धारण करती हैं, और उनका मूल और अन्तिम परिणाम होती हैं, वही उस स्वरसाम्यता की असली जान हैं।

इसी प्रकार प्रकृति के ऊपरी नियमों और बाह्य हेतुओं के ऊहापोह

से प्रकृति की व्याख्या नहीं होती, किन्तु उसको 'मनुष्य-शरीर जैसा बनाये जाने पर" ही वह समझ में आती है। दूसरे शब्दों में जब तक उसके साथ अपने शरीर-जैसा तदात्म भाव न होगा, तब तक वह पहचानी नहीं जा सकती।

जब तक तुम सबको अपना आप भान न करोगे, तब तक तुम सबको जान नहीं सकते। वास्तविक तथ्य में गोता लगाना, नामों और रूपों के नीचे की थाह लेना, वनों और उपवनों में, पहाड़ों और नदियों में, दिन और रात में, नेत्रों और नक्षत्रों में आजादी से विचरना, पुरुषों और नारियों में, पशुओं और फ़िरिश्तों में, हरेक की और सबकी आत्मा में निर्द्वन्द्व हो कर विचरना, यही जीवन है, यही आत्म-ज्ञान है, सच्ची बुद्धिमानी है।

"The whole world is bound to co-work with one who feels himself one with the whole world."

"जो समग्र संसार के साथ अपने को अभिन्न अनुभव करता है, समग्र संसार उसके साथ काम करने के लिए बाध्य है।"

कारण जगत् में ज्ञान (सत्य का सजीव जीता-जागता ज्ञान) की उपलब्धि हो जाने पर वही ज्ञान आत्यन्तिक प्रेम की धार में परिणत हो जाता है। दूसरे शब्दों में सबके साथ और सारे जगत् के साथ अभिन्नता की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो जाज्वल्यमान सूर्य की भाँति चिरन्तन आनन्द के रूप में फूट निकलती है, जहाँ यद्यपि फल की चेष्टा नहीं होती, पुरस्कार की इच्छा नहीं होती, और कोई कामना नहीं रहती (क्योंकि मानसिक लोक में यही ज्ञान त्याग के रूप में प्रकट होता है), तथापि स्थूल जगत् में अद्भुत तेज और शक्तिशाली कार्य की भाँति प्रादुर्भूत होता है।

इस लिए, ज्ञान का अनुभव कीजिये और प्रेम से कर्म में निरत होकर त्याग प्राप्त कीजिये।

I have no scruple of change, nor fear of death,
Nor was I ever born,
Nor had I parents
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute
Bliss Absolute,

I am That, I am That.
I cause no misery, nor am I miserable,
I have no enemy, nor am I enemy
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute,
Bliss Absolute,

I am That, I am That.
I am without form, without limit,
Beyond space, beyond time,
I am in everything
I am the bliss of the Universe,
Everywhere am I,
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute
Bliss Absolute,

I am That I am That
I am without body or changes of the body,
I am neither sense, nor object of the senses,
I am Existence Absolute, Knowledege Absolute
Bliss Absolute

I am That, I am That
I am neither sin, nor virtue,
Nor temple nor worship,
Nor pilgrimage, nor books
I am Existence Absolute, Knowledge
Absolute, Bliss Absolute.

I am That, I am That.

Within the temple of my heart
The light of love its glory sheds.
Despite the seeming prickly thorns
The flower of love free fragrance spreads
Perennial springs of bubbling joy
With radiant sparkling splendour flow.
Intoxicating melodies
On wings of heavenly zephyrs blow.
Yea! Peace and bliss and harmony—
Bliss, oh, how divine!
A flood of rolling symphony
Supreme is mine
Free birds of golden plumage sing
Blithe songs of joy and praise
Sweet children of the blushing spring
Deep notes of we'come raise
The roseate hues of nascent morn
The meadows, lakes, and hills adorn
The nimbus of perpetual grace
Cool showers of nectar softly rains
The rainbow arch of charming colours
With smiles the vast horizon paints,
The tiny pearls of dewdrops bright
Lo! in their hearts the sun contain.
O joy! the Sun of love and light,
The never-setting Sun of life
Am I, am I

हर्ष ! प्रेम और प्रकाश का सूर्य,
जीवन का कभी अस्त न होनेवाला सूर्य,
मैं हूँ, मैं हूँ।
वह प्रियतम प्यारा
मेरे निकट, निकटतर आया—
मुस्कराता और कनखियों से देखता हुआ,
गाता बजाता और नाचता हुआ,
मैंने आह भर कर नमस्कार किया,
उसने उत्तर दिया, नहीं
मैंने प्रार्थना की और दण्डवत् की,
वह छोड़कर चला गया।
मैंने कहा कि—
"क्यों इस तरह मुझसे अलग होते हो ?
ठहरो, कृपा कर ठहरो, जाओ नहीं।"
उसने धीमे से उत्तर दिया—
"नहीं, नहीं।"
मैं बहुत गिड़गिड़ाया—
"प्रभु ! कृपा कर मेरे पास बैठो तो।"
उसने उत्तर दिया।
"यदि मेरे पास बैठना चाहता है ?
तो जा अपने पास बैठ।"
मैं—"मुझसे बोलो तो।"
वह—"आन्तरिक गहरी चुप्पी में प्रवेश कर।"
मैं—"मैं तुझे गले लगाऊँ और चूमूँ,
प्यारे, मुझे इतनी भिक्षा दे दो।"

I [illegible] Th[illegible], I am that
W[illegible]
The light of love [illegible] glory sheds
Despite the seeming prickly thorns
The flowers of love free fragrance [illegible]
Perennial springs of bubbling joy
With radiant sparkling splendours flow.
Intoxicating melodies
On wings of heavenly zephyrs blow.
Yea! Peace and bliss and harmony—
Bliss, oh, how divine!
A flood of rolling symphony
Supreme is mine.

Free birds of golden plumage sing
Blithe songs [illegible] and praise
Sweet children of the blushing spring
Deep notes [illegible] raise
The ro[illegible] of nascent morn
The meadows, lakes, and hills adorn
The nimbus of perpetual grace
Cool showers of nectar softly rains
The rainbow arch of charming colours
With smiles the vast horizon paints,
The tiny pearls of dewdrops bright
Lo! in their hearts the sun contain.
O joy! the Sun of love and light,
The neversetting Sun of life
Am I, am I

You outward fly
Don't slight me so,
Nor outward go.

(६) मेरे मन-मन्दिर के अन्दर
प्रेम का प्रकाश अपना तेज बिखेरता है।
ऊपर से चुभने वाले काँटों की भांति
प्रेम-पुष्प भी स्वच्छन्द सुगन्ध फैलाता है।
प्रफुल्ल प्रसन्नता का अक्षय स्रोत,
प्रकाशमय किरण जैसी चमक से बहते हैं।
बेसुध करनेवाले मधुर स्वर
मंद पवन के पंखों पर उड़ते हैं।
ओह ! शान्ति और कल्याणकर मधुर ध्वनि—
आनन्द, अरे, कैसा दैवी आनन्द विराजमान है।
सुखकर स्वर की लहराती बढ़िया,
यह परम आनन्द मेरा अपना है।
स्वतन्त्र और सुनहले पंखों की चिड़ियाँ,
हर्ष और प्रशंसा के प्रमोदमय गीत गाने वाली।
प्रफुल्लित चश्मे के सुमधुर बच्चे,
वर्धिष्णु प्रभात के गुलाबी रंग,
चरागाहों, झीलों और पहाड़ियों को अलकृत करने वाले,
शाश्वत अनुकम्पा का दीप्ति मंडल
अमृत के शीतल छींटें मधुरता बरसाने वाले,
मनोहर रंगों के इन्द्र-धनुष की मेहराब !
मुस्कुराहटों के साथ भू-मंडल को रंगने वाले।
ओस के चमकीले नन्हे नन्हे मोती
देखो ! अपने हृदय में सूर्य को धरनेवाले।

महान् आचार्य शंकराचार्य से एक बड़ी भारी भूल यह हुई कि उन्होंने अपने अनुभव को प्रमाणों के आवरण से ढक दिया। जो सत्य उन्हें स्वानुभव से प्राप्त हुआ था उसे क्यों उन्होंने प्राचीन प्रमाणों को तोड़-मरोड़ कर निकालने का प्रयत्न करने में अपना समय व्यर्थ नष्ट किया। क्या स्वानुभव से भी अधिक विश्वसनीय कोई प्रमाण हो सकता है? उनके पश्चात् जो दूसरे आये (रामानुज, माधव इत्यादि), उन्होंने भी उन्हीं प्राणहीन शब्दों को लिया, और उन्हीं मूल ग्रन्थों से जबरदस्ती अपने मनमाने अर्थ निकाले। इस मिथ्या-पूर्ण प्रयत्न से सत्य की गति तीव्र होने के बदले उलटा रुक गई। स्पष्ट शब्दों में भारत के वर्तमान दुःखों का कारण प्राकृतिक क्रम को लौट देना है। हमने अपनी चैतन्य आत्मा को प्राचीन ग्रन्थों के भूलों का गुलाम बना दिया है। भारत भगवती की ऐसी दुर्दशा हुई है कि एक पुत्र उसके केशों को एक तरफ खींचता है, दूसरा दूसरी तरफ, तीसरा तीसरी और चौथा चौथी ओर—इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य श्रुति के नाम से अपने मनमाने अर्थ का प्रचार करना चाहता है और इस सबका परिणाम यह होता है कि भारत की सभ्यता नष्ट हो जाती है। हे प्राचीन भारत के ऋषियो और आचार्यो! देखो तो तुम्हारे समाज किस अधोगति को पहुँच गये हैं कि वे अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं और नवीनतम वस्तुस्थिति के प्रश्नों को उस भाषा के व्याकरण के नियमों से तय करते हैं जिसका बोलना न जाने कब से बन्द हो गया है।

प्यारे! दिवस और सन्ध्याएँ मनुष्य के [illegible] मनुष्य नियमों और सन्ध्याओं के लिए नहीं है। कुछ लोग समझते हैं कि सन्ध्या के द्वारा [illegible] और शुभफल का गठबन्धन हो जाता है [illegible] जितना लम्बा पाठ और जिस उत्तम रीति से वर्णन किया जाता है परन्तु क्या उन करने वाले पुरुषों में पहले ही से [illegible] के मन्दिर [illegible] बन्द

पढ़ते रहो, तब तो ये आत्र वृक्ष थोड़े ही काल में अन्तर्धान हो जायँगे। न तो वाटिका के खेतों पर प्रकाशित सूर्य के तेज से खेतों के वृक्ष जीवित रह सकते हैं, और न बुद्ध भगवान्, ईसामसीह अथवा मोहम्मद के अनुभव से शेक्सपीयर, न्यूटन या स्पेन्सर को शांति मिल सकती है। इसलिए हमें अपने प्रश्न स्वयं हल करने होंगे, और पुरातन काल के सम्माननीय ऋषियों और दार्शनिकों की आँखों से देखने की अपेक्षा सारी बातों को स्वयं अपनी आँखों से देखना प्रारम्भ करना चाहिए।

प्रत्येक स्मृति में स्पष्ट प्रश्न है 'पूर्व काल में हम लोग इस बात पर एक मत हुए थे, आइये विचारें – आज इन विषय में हमारा क्या मत हो सकता है?' प्रत्येक मनुष्य सिक्का जैसी होती है, जो मोहर छाप लगाने से चलता है। कुछ काल चलने के बाद उस सिक्के के अक्षर मिट जाते हैं और वह पहचाना नहीं जाता, इसलिए पुनः टकसाल में भेजा जाता है। प्रकृति को इस बात से आनन्द आता है कि वह अपने नगों (संसार के पदार्थों) को सजाने-बिगाड़नी और फिर-फिर नया आकार देती है। परिवर्तनहीन परिवर्तन ही जीवन की एक मात्र रीति है, इसके बिना जीवन आगे नहीं चलता।

और कोई सोचने योग्य नहीं, सोचने योग्य है केवल वही, जिसका भविष्य उसके पीछे और भूतकाल सदा उसके आगे रहता है। निम्न लिखित विवेचना की प्रत्येक बात गीता, मनुस्मृति और श्रुति के प्रमाणों से पुष्ट की जा सकती है परन्तु इच्छा-पूर्वक जान-बूझकर ऐसा नहीं किया जाता है क्योंकि ऐसा करने से और और विषय छिड़ जायँगे और मुख्य बात रह जायगी। दिपनी प्रमाण देने लगेंगे और शब्द की सूखी हड्डियाँ चबानी शुरू होंगी, दूसरे शब्दों में वितण्डावाद खड़ा होगा। इसके सिवा इस शिक्षा की उस हानिकारक पद्धति को उत्तेजना देने का पाप भोगना पड़ेगा; जो तथ्य या वस्तुस्थिति के अध्ययन की अपेक्षा ग्रन्थ को अधिक महत्व देती है।

लगा चुके हैं ? सत्य को समझाने की आवश्यकता नहीं, सत्य झुक नहीं सकता। पृथ्वी दिन-रात सूर्य की परिक्रमा करे, परन्तु सूर्य को पृथ्वी की परिक्रमा करने की आवश्यकता नहीं। अब और अधिक या तेज और बनाने करने के अभिप्राय से क्या विज्ञान के आधुनिक आविष्कार ईसाइयों की बाइबल किंवा दूसरे धर्म ग्रन्थों (जैसे भाष्यादि) के सर जोड़े जा सकते हैं ? ईश्वरप्रणीत धर्म ग्रन्थों को स्वयं बोलने दो। ईश्वर में इतनी सज्जनता तो अवश्य होनी चाहिए कि वह अपने वचनों को अनेक अर्थों वाला न बनाये। वह ऐसा क्यों करे कि संसार के हज़ारों वर्ष तक एक भूल से दूसरी भूल में गोते खाते रहें, और जब तक कोई स्वयंभू ईश्वरदूत या टीकाकार आकर उनके अर्थ न करे तब तक समझें ही नहीं। ऐसे टीकाकार तथा स्वयभू ईश्वरदूत पक्षपात-रहित न्यायाधीश होने का दावा तो करते हैं, परन्तु वकीलों की धूर्तता-पूर्ण कुटिलता का सा व्यवहार करते हैं। क्या प्रमाणों से सत्य की स्थापना हो सकती है ? क्या सूर्य दिखाने के लिए छोटे से दीपक की आवश्यकता होती है ? क्या गणित-शास्त्र के किसी सरल से सरल सिद्धान्त की और अधिक पुष्टि हो जाती है, यदि ईसा, मुहम्मद, ज़रदुश्त अथवा वेद उसकी साक्षी देने लगें ? रसायन-शास्त्र के तत्वों का ज्ञान हमको प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा होता है। इनका विश्वास मस्तिष्क में भर लेना तो मानो बुद्धि के संहार का पाप अपने माथे पर लाना है। किसी घटना विशेष और त्रिकालाबाधित सत् को—तीनों कालों में एक समान रहनेवाले सत्य को—एक मत समझो। किसी विशेष घटना को हम दूसरे के प्रमाण से मान सकते हैं, परन्तु सत्य स्वतः अनुभव से मालूम होता है। क्या वेदान्त को वाद-विवाद और प्रमाणों से सिद्ध करने की आवश्यकता है ? क्यों हो ? वेदान्त के सिद्धान्त का उचित प्रतिपादन ही उसका अखंडनीय प्रमाण है। सौन्दर्य के आकर्षण के लिए किसी बाहरी सिफारिश की आवश्यकता नहीं होती।

आधा उत्पन्न कर देता है। और जिस नवीन दुःख को वह पैदा करता है, उसके शतांश भाग को भी वह निवारण नहीं कर सकता। दान का निर्णय उसके परिणाम से करना चाहिए, न कि दाता की मंशा से। वह दुर्बलचित्त यात्री जो किसी हट्टे-कट्टे और आलसी भिखारी को एक-आध पैसा दे देता है, भले ही अपने मन में सोच ले कि उसने परलोक में अपने जीव की रक्षा के लिए कुछ पुण्य कमाया है—यह बात ठीक हो या न हो, परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उसने इस लोक में अपने राष्ट्र के नाश में अवश्य कुछ भाग बटाया है।

हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि हमें ठीक तरह का यज्ञ करना चाहिए—अर्थात् दीन और अनाथ लोगों की सेवा और रक्षा इस रीति से करना चाहिए कि हमारे मूल उद्देश्य का नाश न हो। ऐसी परिस्थिति में जो सबसे बड़ा दान आप किसी को दे सकते हैं वह है केवल विद्या-दान। आज आप किसी मनुष्य को भोजन करा दीजिए, कल फिर उसे वैसी क्षुधा लगेगी। परन्तु यदि इसके बदले आपने उसे कोई धन्धा सिखा दिया, तो आप उसे जन्म भर रोटी कमा खाने के योग्य बना देंगे। हाँ, जो विद्या उसे सिखाई जाय वह ऐसी हो कि उससे उस मनुष्य का जीवन वास्तविक रूप से सार्थक हो जाय। और अन्य ऊटपटांग कामों से आजकल भूख बढ़ाने का काम ही। ऐसा अति उत्तम हो सकता है।

जो लोग तुमसे धन, ज्ञान, शक्ति या अन्य बात में छोटे हों, उनके साथ तुम्हें वैसी ही सहानुभूति प्रकट करना चाहिए और उनकी वैसी ही सहायता करनी चाहिए जैसी तुम अपने बच्चों की करते हो। अतः, प्रतिफल की आशा को हृदय से निकालकर मातृपद के इस परम सुख को भोगो। माता का पद बड़ा गौरवशाली है। उसमें स्थित हो, आध्यात्मिक भोजन दो। इसलिए, ज्ञान और भक्ति से अपने बच्चों की सेवा करो—यही सबसे बड़ा निष्काम यज्ञ है।

उसमें अग्नि को कार्बन डाइ-आक्साइड ही मिलता है जो स्वतः सब प्राणिनाशक होता है।

एक समय ऐसा था जब कि भारतवर्ष में मनुष्य-जनसंख्या की अपेक्षा जंगल अधिक थे। उन दिनों सम्भव है—घी इत्यादि अन्य सिक्थ-मय पदार्थों (Hydro carbonates) के जलाने से वनस्पतियों के उगने में कुछ थोड़ी बहुत सहायता भी मिलती रही हो, क्योंकि इससे कार्बन डाइ-आक्साइड (वृक्षों का आहार) पैदा होता है। परन्तु आजकल स्थिति बिल्कुल उल्टी है। एक तो अब यहाँ वे जंगल नहीं रहे और दूसरे जन-संख्या की भी निःसीम वृद्धि के फलस्वरूप वायु में कार्बन-डाइ-आक्साइड अधिक बढ़ गया है। जिससे लोग आलसी बन गये हैं। इन दिनों भारतवर्ष को प्राणवायु (Oxygen) और तीव्र प्राण-वायु (Ozone) की विशेष आवश्यकता है, न कि कार्बन डाइ-आक्साइड की।

यह बात याद रखना चाहिए कि अग्नि में हवन करने और लोगों को भोजन कराने का एक ही सा रासायनिक परिणाम होता है। अतः अमूल्य घृत को कृत्रिम अग्नि के मुँह में झोंकने के बदले सूखी रोटी के टुकड़े उस जठराग्नि में क्यों नहीं डाले जाय जो लाखों भूखे परन्तु साक्षात् नारायण स्वरूप गरीब लोगों के अस्थि-मांस को खाये जा रही है! सचमुच उसी हवन की आजकल भारत में विशेष आवश्यकता है।

फिर ज़रा सोचिये यदि आपने एक दिन हजार, दो हजार आदमियों को भोजन करा भी दिया तो इससे लाभ क्या होगा? यह बिना विचारे दान करने की प्रथा तो केवल भले मानस भिखारियों की ही संख्या बढ़ाती है। यह इतना सारा दुःख भारतवर्ष में क्यों है? बिना सोचे-विचारे दान देने की प्रथा से पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना दान क[illegible] [illegible]र्ष की दरिद्रता का एक मूल कारण है। एक फूँच [illegible] कि दान जितना दुःख दूर करता है उससे

रूप धारण कर लिया। इस प्रकार स्वयं ही हमने उनको स्वतंत्र रूप से अपने सिर चढ़ा लिया।

आगे चलकर भारतवर्ष के इतिहास में हम यह देखते हैं कि यज्ञों का स्थान पौराणिक कर्मकाण्ड ने ले लिया था। हम यह भी देखते हैं कि महाभारत के गृह युद्ध ने देश में व्यापक हेर-फेर पैदा कर दिया था। धार्मिक और राजकीय क्रान्तियों से राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो गई। प्राचीन देवताओं के प्रति हमारी भावना बिलकुल बदल गई। दैनिक आवश्यकतायें बढ़ गईं। लोगों के पास इतना अधिक समय न था कि एक एक यज्ञ करने में महीनों और वर्षों लगा दें। आप देख सकते हैं, प्राचीन यज्ञ के स्थान में पौराणिक कर्मकाण्ड हेतु माना गया है। इसके द्वारा हमें एक ऐसी परम्परा मिलती है कि हम अपने धर्म को तनिक भी हानि पहुंचाये बिना समय की आवश्यकतानुसार अपने कर्मकाण्ड में आवश्यकीय परिवर्तन कर सकते हैं।

हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि स्मृति, रीति-रिवाज, आचार-विचार, विधि, संस्कार (अर्थात् सम्पूर्ण कर्मकाण्ड) समयानुसार केवल बदलते ही नहीं रहे हैं परन्तु एक ही देश के विभिन्न भागों में विभिन्न रूप से चलते रहे हैं। किसी समाज का जीवन उसके प्रचार, प्रसार और उचित परिवर्तन पर निर्भर करता है। 'बदलो या मरो' प्रकृति का यह एक अटल सिद्धान्त है।

आधुनिक विकासवाद के देश के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रेसीडेन्ट डाक्टर [illegible] सोर्किन सामाजिक विकास के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए हमें स्पष्ट लिखा है कि समाज की पूर्ति में [illegible] सदैव [illegible] प्रतीत होती है, क्योंकि वस्तुतः [illegible] होता है। जो समाज विकासशील होता है उसकी [illegible] जाती है, जैसे [illegible] विकास [illegible] ही [illegible] जाता है। विधि के साथ [illegible] रहने के लिए

किसी अन्य अवसर पर हम भारतवर्ष के कर्मकांड के इतिहास की विस्तृत चर्चा करेंगे। भारतवर्ष में, प्राचीन समय में जबकि समाज आजकल की तरह व्यापारी नहीं था, खाना-पीना, पहनावा, सहज रीति-भाँति की ओर लोगों का उतना ध्यान न था और वर्तमान यूरोप के कुछ भागों के अनुसार फल-फूल के वृक्षों की भरमार अधिकता थी, जब अमेरिका के वर्तमान मूल निवासियों की भाँति भारतवर्ष के लोगों को कपड़े की विशेष आवश्यकता न थी, जबकि छायादार वृक्ष और पहाड़ों की गुफायें लोगों को घर का काम देती थीं; उस समय लोगों की मानसिक और शारीरिक संचित शक्ति के प्रसार के लिए कोई दूसरा मार्ग न होने के कारण यह शक्ति देवताओं से संपर्क करने की ओर झुकी, अर्थात् हर प्रकार के यज्ञ होने लगे। मूलतः ये सारे यज्ञ देवताओं से ठीक-ठीक और सच्चे व्यवहार के प्रादुर्भाव मात्र थे। उनमें याचना, खुशामद, अपने को तुच्छ समझना, दास्य-वृत्ति और 'भिक्षां देहि' का नाम तक न था। हमारे पूर्वजों ने अपनी समझ के अनुसार दैवी शक्तियों से बराबरी के नाते यज्ञों के रूप में व्यवहार किया था। यदि उन यज्ञों को पंच महाभूतों के देवताओं के साथ आदान-प्रदान का साधन कहा जाय तो अयुक्त न होगा। उनमें आजकल का सा स्वार्थमय व्यापारी ढंग बिलकुल न था, थी उनमें केवल पारस्परिक लेन-देन की शुद्ध भावना और सच्ची वणिक् वृत्ति।

ये सारे यज्ञ एक 'यदि' पर अवलम्बित थे! यदि तुम्हें वृष्टि इष्ट है तो अमुक यज्ञ करो, तुम्हें सन्तान चाहिए तो अमुक यज्ञ करो, यदि तुम्हें जय लाभ करना है तो दूसरे प्रकार का यज्ञ करो, और यदि तुम्हें धन चाहिए तो तीसरे प्रकार का यज्ञ करो इत्यादि, इत्यादि।

इस प्रकार 'यदि' से संवलित ये यज्ञ हमारी इच्छाओं से बँधे होने के कारण केवल (सभी कर्त्तव्यों की भाँति) ऐच्छिक थे। प्रारम्भ में वे अनिवार्य न थे, धीरे धीरे वे रूढ़ हो गये और उन्होंने लोकाचार का

किसी अन्य अवसर पर हम भारतवर्ष के कर्मकांड के इतिहास की विस्तृत चर्चा करेंगे। भारतवर्ष में, प्राचीन समय में जबकि समाज आजकल की तरह बनावटी नहीं था, खान-पान, वस्त्राभूषण, वरदार रीति-भाँति की ओर लोगों का इतना ध्यान न था और वर्तमान डार्लीन के कुछ भागों के अनुसार फल-फूल के वृक्षों की सर्वत्र अधिकता थी, जब अमेरिका के वर्तमान मूल निवासियों की भाँति भारतवर्ष के लोगों को कपड़े की विशेष आवश्यकता न थी, जबकि छायादार वृक्ष और पहाड़ों की गुफायें लोगों को घर का काम देती थीं; उस समय लोगों की मानसिक और शारीरिक संचित शक्ति के बहाव के लिए कोई दूसरा मार्ग न होने के कारण वह शक्ति देवताओं से संपर्क करने की ओर झुकी, अर्थात् हर प्रकार के यज्ञ होने लगे। मूलतः ये सारे यज्ञ देवताओं से ठीक-ठीक और सच्चे व्यवहार के प्रादुर्भाव मात्र थे। उनमें याचना, खुशामद, अपने को तुच्छ समझना, दास-वृत्ति और 'भिक्षा देहि' का नाम तक न था। हमारे पूर्वजों ने अपनी समझ के अनुसार दैवी शक्तियों से बराबरी के नाते यज्ञों के रूप में व्यवहार किया था। यदि उन यज्ञों को पंच महाभूतों के देवताओं के साथ आदान-प्रदान का साधन कहा जाय तो अयुक्त न होगा। उनमें आजकल का सा स्वार्थमय व्यापारी ढंग बिलकुल न था, थी उनमें केवल पारस्परिक लेन-देन की शुद्ध भावना और सच्ची वणिक् वृत्ति।

ये सारे यज्ञ एक 'यदि' पर अवलम्बित थे! यदि तुम्हें वृष्टि इष्ट है तो अमुक यज्ञ करो, तुम्हें सन्तान चाहिए तो अमुक यज्ञ करो, यदि तुम्हें जय लाभ करना है तो दूसरे प्रकार का यज्ञ करो, और यदि तुम्हें धन चाहिए तो तीसरे प्रकार का यज्ञ करो इत्यादि, इत्यादि।

इस प्रकार 'यदि' से संबंधित ये यज्ञ हमारी इच्छाओं से बँधे होने के कारण केवल (सभी कर्त्तव्यों की भाँति) ऐच्छिक थे। प्रारम्भ में वे अनिवार्य न थे, धीरे धीरे वे रूढ़ हो गये और उन्होंने लोकाचार का

वे ही नीचे उतरकर हम लोगों के साथ स्वतन्त्रता से मिले-जुलें, ताकि सभी लोग उन्हें भली-भाँति जान जायें ?

प्यारे महाभाग देश बान्धवो ! राम यह तो कदापि नहीं कह सकता कि तुम सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, विद्युत्, मेघ वरुण आदि में "एकं सद्" ईश्वर के दर्शन न करो, जैसा कि प्राचीन आदरणीय ऋषियों ने किया था। वरन् उसका कहना तो यह है कि तुम प्रकृति में ईश्वर को प्रकृति रूप से अवश्य देखो। परन्तु ज़रा अपनी दृष्टि और भी फैलाओ, और रासायनिक प्रयोगशाला और विज्ञान भवन (Science room) में भी ईश्वर के दर्शन करो। रासायनिक की मेज़ भी तुम्हें यज्ञ की अग्नि के समान पवित्र प्रतीत हो। पुरातन होमाग्नि को अथवा यज्ञ की अग्नि को तुम पुनर्जीवित नहीं कर सकते, परन्तु उस पुरातन काल के प्रेम, आदर और भक्ति का पुनरुद्धार तो तुम कर सकते हो और तुम्हें अवश्य करना चाहिए। दूसरे शब्दों में अपने वर्तमान कामों में इन्हीं उच्च भावनाओं का प्रयोग करो जिनका करना समय की आवश्यकतानुसार तुम्हारा कर्तव्य है। विद्वान् आनेसिन प्रश्न करता है कि "क्या प्रकृति का अध्ययन करना ईश्वर के विचारों को फिर से दुहराना नहीं है ? ऐसा करो कि तुम्हारे सब कामों में पवित्रता और शुचिता का भाव भर जाय। यदि मैं यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित नहीं कर सकता तो मैं लुहार की अग्नि को यज्ञाग्नि के सदृश पवित्र बनाऊँगा। प्यारे ! यह तो तुम्हारी सर्वत्र राम दृष्टि पर निर्भर है कि तुम विज्ञान की कुदाली को इन्द्र का वज्र बना लो। इसी ब्रह्म अथवा आत्म दृष्टि का प्राप्त करना ही सच्चे यज्ञ का मुख्य मन्तव्य है।

अपनी वर्तमान राष्ट्रीय स्थिति का अनुभव करने के लिए तुम अपने भावी जीवन या भावी आत्मा को बिल्कुल भुला दे देते हो। ऐसे भयंकर नास्तिक मत बनो। अपने जीवनकाल में तुम्हारा कुछ कर्तव्य अपने

हमको हमेशा परिवर्तन करना ही पड़ता है क्योंकि स्थिति सदैव बदला ही करती है। ऐसा स्थिरतात्मक मनोराज्य जो लगातार युगयुगान्तरों तक बना रहे, जिस में संघर्ष और परिवर्तन का लेश मात्र न हो, जिसमें सब लोग सुखी और सुरक्षित रहें, मनुष्य और जगत् सम्बन्धी हमारे ज्ञान में तो उसकी कहीं कोई आशा दिखाई नहीं पड़ती।

इसलिए अपनी परिस्थिति के अनुसार हमें अपना कर्मकांड अवश्य बदलना चाहिए। वैदिक काल के ऋषियों की आवश्यकताओं से हमारी आवश्यकतायें बिलकुल भिन्न हैं। वे सब 'शक्तियां' जिन पर सम्पूर्ण कर्मकांड अवलम्बित है, बिल्कुल बदल गई हैं। आजकल हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है कि "यदि तुम्हें गाय-भैंसों की ज़रूरत है तो इन्द्र देव को हव्य भेंट करो' अथवा 'यदि तुम्हें अधिक सन्तान की आवश्यकता है तो प्रजापति को प्रसन्न करो' आदि आदि। परन्तु आज कल के कर्मकांड की समस्या ने निम्न स्वरूप धारण किया है— यदि तुम उद्योग-धन्धों और कला कौशल में निरन्तर वृद्धि करनेवाला वर्तमान शताब्दी में जीवित रहना चाहते हो, यदि तुम्हारी यह इच्छा नहीं है कि तुम राजनैतिक यन्त्रणा से पीड़ित होकर घुल घुलकर मर जाओ, तो विद्युतरूपी मातरिश्वा पर अपना अधिकार जमा लो, [illegible]रूपी वरुण को अपना दास बना लो, कृषि शास्त्ररूपी कुबेर से परिचय करो। इन देवताओं से तुम्हारा परिचय कराने वाले पुरोहित होंगे वैज्ञानिक और कलाविद् जो इन विद्याओं को पढ़ाते हैं।

धर्मशून्य भाषा के प्रयोग का अपराध राम पर न लगाना, जहाँ हर एक वस्तु परिवर्तनशील है। देश का स्वरूप [illegible] बिल्कुल बदल गया है, राजसत्ता बदल गई है, भाषा बदल गई है, लोगों का रंग (वर्ण) [illegible] गया है, तब फिर आपके देवता ही क्यों स्वर्ग में बैठे बैठे अपने [illegible] करें, समय के साथ वे भी क्यों न बदलते रहें? क्यों न

भिन्न प्रान्तों के अनेकानेक धर्म और पंथ के लोग एकत्रित हों, और इस प्रकार जीवन के गम्भीर और विनोदप्रिय—दोनों अंगों की पूर्ति की सामग्री जुटायी जाय। और वहाँ पर, प्राचीन भारत की प्रथा के अनुसार, भगिनी अपने भाई के साथ, पत्नी अपने पति के साथ और पुत्र अपनी माताओं का हाथ पकड़े हुए इधर-उधर टहलते दिखाई दें, जैसा कि वर्तमान समय में बम्बई में रिवाज है। इनके साथ ही साथ यह भी हो कि सब श्रेणी के, सब पंथों के और सब धर्मों के वक्ताओं को प्रेममयी वक्तृता देने के लिए एक सामान्य सर्वमान्य व्यासगद्दी हो।

राष्ट्रीय एकता की वृद्धि में एक दूसरा साधन है राष्ट्रीय साहित्य का उत्पादन, उसकी उन्नति और उसकी परिष्कृति और यह कार्य देश की वर्तमान जीवित देशी-भाषाओं में एकता पैदा करके ही हो सकता है।

इसी उद्देश से भिन्न-भिन्न स्थानों पर 'ॐ मन्दिर' भी स्थापित किये जा सकते हैं। वहाँ सभी धर्मों के लोग स्वतन्त्रता से आ-जा सकें, पढ़ें, ध्यान करें, शान्ति से प्रार्थना करें और एक दूसरे को सहानुभूतिमय और प्रेम की दृष्टि से देखें, परन्तु आपस में बातचीत के बिना ही।

वहाँ देश के युवक इकट्ठे होकर खुले मैदान में व्यायाम भी करें और श्रम की रीति से प्रत्येक शारीरिक गति को एक आध्यात्मिक भावना सूचक चिह्न में बदल दें, जिसमें वह प्रिय देशोद्धार निमित्त और ईश्वर को स्वीकार्य यज्ञ में आहुतिरूप हो जाय।

स्नान करते समय हमें उपयोगी और हृदय को पवित्र करनेवाले गीत गाना चाहिए, पर वे ऐसी भाषा में न हों जिसे हम समझ ही न सकें।

ऋतु के अनुसार तरुण मंडली नदियों के किनारे हरी घास पर अथवा वृक्षों की छाया में आकाशमंडल के नीचे एक साथ बैठकर भोजन करें। और प्रत्येक ग्राम के भीतर और बाहर से अनवरत मन और वचन से ॐ ॐ का उच्चारण करती रहें। राष्ट्रीय गीत ज्वालामय शब्दों में

सजीव विचारों से भरे हुए सामूहिक गान एकता उत्पन्न करने में जादू का काम करते हैं।

हवन के लिए कृत्रिम अग्नि प्रज्वलित करने की अपेक्षा सात्विक युवकों को चाहिए कि प्रभात काल अथवा सायंकालीन सूर्य बिम्ब के तेज में अपने कलुषित, तुच्छ अहंकार की बलि चढ़ा दें।

Disciple ! up, untiring hasten,
To bathe thy breast in morning red

उठो उठो हे शिष्य ! सकल आलस तज दीजे।
प्रात कालिमा माहिं उरस्थल मज्जन कीजे॥
([illegible])

उस तेज के सागर में डुबकी मारो और तेजपुञ्ज बनकर बाहर निकलो, और फिर अपने दिव्य प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् को नहला दो। इसी का नाम हवन है।

लोगों में, विशेष करके स्त्रियों और बालकों में (और इसलिए भावी सन्तान में) प्रेम और एकता उत्पन्न करने का एक उत्तम उपाय है नगरकीर्तन अर्थात् गायन और नृत्य करते हुए, तथा सुरुचिपूर्ण तमाशे दिखाते हुए रास्तों से निकलना और [illegible] नाम की जय-जयकार लगाना।

[illegible] देश के किसी नेता पर निर्दयतापूर्ण अत्याचार का होना अथवा किसी धर्मवीर का प्राण लिया जाना [illegible] में एकता उत्पन्न करने में [illegible] जैसा काम करता है। [illegible] [illegible] जीवन [illegible] केवल एक [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] कर सकता है।

[illegible]

भिन्न प्रान्तों के अनेकानेक धर्म और पंथ के लोग एकत्रित हों, और इस प्रकार जीवन के गम्भीर और विनोदप्रिय—दोनों अंगों की पूर्ति की सामग्री जुटायी जाय। और वहाँ पर, प्राचीन भारत की प्रथा के अनुसार, भगिनी अपने भाई के साथ, पत्नी अपने पति के साथ और पुत्र अपनी माताओं का हाथ पकड़े हुए इधर-उधर टहलते दिखाई दें, जैसा कि वर्तमान समय में बम्बई में रिवाज है। इसके साथ ही साथ यह भी हो कि सब श्रेणी के, सब पंथों के और सब धर्मों के वक्ताओं को प्रेममयी वक्तृता देने के लिए एक सामान्य सर्वसाधारण व्यासगद्दी हो।

राष्ट्रीय एकता की वृद्धि में एक दूसरा साधन है राष्ट्रीय साहित्य का उत्पादन, उसकी उन्नति और उसकी परिष्कृति और यह कार्य देश की वर्तमान जीवित देशी भाषाओं में एकता पैदा करके ही हो सकता है।

इसी ढंग से भिन्न भिन्न स्थानों पर [illegible] मन्दिर भी स्थापित किये जा सकते हैं। वहाँ सभी धर्मों के लोग स्वतन्त्रता से आ-जा सकें, [illegible], शान्ति से प्रार्थना करें, और एक दूसरे से सहानुभूति- [illegible] विना हो।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

है कि तुम्हें भूत और वर्तमान दोनों को स्वीकार करके आगे बढ़ना चाहिए। जिस प्रकार वे लोग तुम्हारी प्राचीन ब्रह्मविद्या को अपना रहे हैं, उसी तरह तुम्हें भी उनके भौतिक विज्ञान को अपनाना चाहिए।

इतिहास और अर्थ-विज्ञान से यह स्पष्ट है कि जिस तरह वृक्ष की बाढ़ उसकी समयानुकूल काट-छाँट पर अवलम्बित रहती है, उसी प्रकार राष्ट्र की उन्नति भी समय-समय पर कुछ लोगों के देशान्तर-गमन पर निर्भर है। यदि हम कुछ बेकार और भूखे भारतवासियों को संसार के विरल संख्यावाले देशों को भेज सकें तो वहाँ कमाने खाने से वे जीवित रहेंगे और उनके द्वारा भारतवर्ष दूर दूर देशों में भी अपनी जड़ फैला सकेगा उनमें उसका अड्डा जम जायगा। इस रीति से भारत की जड़ता का नाश होगा और इसका बोझा भी कम हो जायगा जिसे ढोने से उसे थकावट भी कम होगी, साथ ही हवा को विषैली करने वाली हानिकारक कार्बनडाइआक्साइड गैस भी कम पैदा होगी। यदि इस कार्य को हम अपनी खुशी से न करेंगे तब भी मानो [illegible] को अपने घर में बन्द कर लिया [illegible] [illegible]

[illegible]

फ़ौजी शिक्षा दी जाती है, वहाँ उनके हृदय में धैर्य, सत्याचरण और स्वार्थत्याग की भावना के सद्गुणों का अंकुर भी जमाना चाहिए।

स्त्रियों, बालकों और मज़दूरों की शिक्षा की उपेक्षा करना मानो उसी शाखा को काटना है, जिस पर हम बैठे हैं। नहीं, नहीं, यह तो सच्ची राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही कुठाराघात करना है।

ऋषियों के बीसवीं शताब्दी के वंशजो! यदि तुम मुनियों के उपदेशों को ठीक-ठीक समझते हो, तो तुम्हें स्मृतियों द्वारा निर्धारित जाति-पाँति के संकीर्ण और हानिकारक बन्धनों को अवश्य तोड़ना पड़ेगा। इसके विरुद्ध यदि तुम सच्ची आत्मा को नहीं पहचानते और श्रुतियों की परवाह भी नहीं करते और बीते हुए जाड़े के गरम कपड़े इस विकट गरमी में भी पहने रहने का आग्रह करते हो, तो अपने पूर्वजों की बुद्धिमत्ता के नाम पर ज़रा दयापूर्वक अपनी स्थिति पर विचार तो करो। स्थूल रूप से मनुष्य केवल कालबद्ध ही नहीं है, वरन् देशबद्ध भी है। काल की दृष्टि से तुम हिमालय के ऋषियों के वंशज ही क्यों न हो, परन्तु देश की दृष्टि से आज तुम विज्ञान और कला-कौशल-विशारद यूरप और अमेरिका निवासियों के समकालीन होने से भी इन्कार नहीं कर सकते।

एक ओर प्राचीन उपनिषदों के अपने परम्परागत ज्ञान को स्वायत्त करो और दूसरी ओर लौकिक जगत् में जापान, यूरप और अमेरिका के व्यावहारिक विज्ञान को ग्रहण करने और उसे जीवन में धारण करने ही से इस संसार में तुम्हारा निर्वाह होगा। बरगद का नन्हा सा पौधा यदि अपने आस-पास के जल, वायु, पृथ्वी और प्रकाश से पालन-पोषण की सामग्री लेने के बदले अपने प्राचीन कुल की प्रशंसा के ही गीत गाता रहता है, तो शीघ्र ही उसका नाश हो जायगा।

यह तो कभी नहीं हो सकता कि वह तुमसे अपने राष्ट्रीय [illegible] छोड़ने के लिए कहे। परन्तु राम तुमसे यह अवश्य कहता

कोठरी में तुमने जन्म लिया था उससे बाहर ही क्यों निकलते हो? और घर छोड़कर सड़क पर क्यों आते हो? तुम केवल पानी और मिट्टी के ही बालक नहीं हो, स्वर्ग के भी हो, तुम स्वर्ग के बालक ही नहीं, वरन् साक्षात् स्वर्ग हो, सर्वत्र हो। एक ही स्थान पर अपने को न बाँधो। भारत अपने आप को सारी दुनिया से अलग रखकर एक कोठरी में बन्द नहीं रह सकता। एक समय ऐसा था जब भारतवर्ष एक अकेला देश था और ईरान दूसरा और भिन्न देश था। परन्तु आज भाप और बिजली की सहायता से देश-काल के बन्धन बिल्कुल टूट गये हैं और समुद्र रुकावट होने के स्थान में राज-पथ बन गया है। पहले के शहर मानो आजकल की सड़कें हैं, और प्राचीन काल के देश मानो इस समय के शहर बन रहे हैं, जो इस एक छोटे से भूमण्डल के टुकड़े पर बसते हैं जिसे संसार कहते हैं। इसी लिए अपने "घर" की कल्पना को विस्तृत करने का यह बड़ा उत्तम समय है। हे प्रकृति और ईश्वर की सन्तान! सारे देश तुम्हारे हैं और मनुष्य मात्र तुम्हारे भ्राता और भगिनी हैं। जाओ वहाँ जहाँ तुम अपने काम का सर्वोत्तम उपयोग कर सको। हिन्दू राष्ट्र के गले से लाखों निवासियों के बोझल हुआ देनेवाले पत्थर का भार बढ़ाने से लाभ? तुम्हें ईश्वर और मानवजाति की शपथ है, जाओ, चले जाओ।

सम्भव है, कुछ लोगों को भारत की यन्त्रणा कम करने का प्रश्न केवल राष्ट्रीय हो किन्तु राम के लिए तो यह अन्तर्राष्ट्रीय है। उनके लिए यह केवल देश भक्ति का प्रश्न हो परन्तु राम के लिए तो यह मनुष्यमात्र का प्रश्न है। मेरे बच्चे मेरी आँखों के सामने मरें! चाहे वे मुझसे दूर रहें परन्तु जीवित तो रहें। आँखों में प्रेमाश्रु भर कर राम तुमको बाहर जाने का आशीर्वाद देता है, जाओ, प्रणाम!

यहाँ शौक से वापस आ जाना, यदि विदेश में उदर-निर्वाह से अधिक [illegible] के योग्य हो जाओ, जैसे जापानी युवक पश्चिम के

है कि देशान्तर गमन से लोगों की सामाजिक अवस्था सुधर जाती है।

यज्ञ के सम्बन्ध में एक दो बातें कहना है। कभी-कभी यज्ञ और हवन 'त्याग' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। परन्तु त्याग ऐसे पवित्र शब्द को क्रियाहीन लाचारी और निराशाजनक कमजोरी मानना भूल होगा। यह दर्पपूर्ण वैराग्य-वृत्ति भी नहीं है। ईश्वर के पवित्र मंदिर अर्थात् मानवी देह को बिना प्रतिकार चुपचाप क्रूर नाशकारक भेड़ियों को सौंप देना त्याग नहीं कहला सकता। अपने आप को अन्याय, अत्याचार और घोर पाप का शिकार बनाने का तुमको क्या अधिकार? यदि कोई स्त्री किसी कामुकता के गुलाम को अपना पवित्र तन अर्पण कर दे, तो क्या यह त्याग कहा जा सकता है? कदापि नहीं। 'त्याग' का अर्थ है अपना सर्वस्व सत्य के समर्पण करना। यह शरीर, यह सारी सम्पत्ति ईश्वर की है। तुम इस पवित्र धरोहर को पाप और अन्याय के हवाले कैसे कर सकते हो। अपने को सत्य से भिन्न और पृथक् समझना और धर्म के नाम पर त्याग करना मानो उस वस्तु को अपनाना है, जो अपनी नहीं है। यह तो अमानत में खयानत है। जो वस्तु अपनी नहीं है, क्या उसका दान करना पाप नहीं है? तुम मध्याह्न जगमगाते हुए सूर्य होकर चमको! सत्य स्वरूप बन जाओ। केवल यही धर्म-सगत 'त्याग' है। जरा कहेंगे, क्या ऐसे त्याग को त्याग कहना ठीक होगा, वह तो ईश्वरीय वैभव प्राप्त करना है। निस्संदेह ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द हैं। संस्कृति और आचरण उसके बाहरी चिह्न हैं।

जो कर्मकाण्ड इस छोटे से अहंकार से जन्मता है वह वैदिक काल में भी मुक्तिदाता नहीं माना जाता था। मुक्ति तो सदा मात्र ज्ञान ही से प्राप्त हो सकती है। इसलिए आजकल का कोटि भी कर्मकाण्ड जितने कर्तव्यों की भाग-दौड़ हो, जिससे मध्य और परिच्छिन्न रूप में स्वार्थ की गुलामी हो हमें पाप और ताप से मुक्ति नहीं दे सकता। चाहे हम

से घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ चला जाता है। आत्मज्ञानी को कोई भी काम-काम रूप प्रतीत नहीं होता, दुर्घट से दुर्घट और महान् से महान कार्य स्थितप्रज्ञ ऐसे कर डालता है, जैसे ग्रीष्म ऋतु का पवन फूल की सुगंध इधर-उधर बिखेर देता है। श्रीशंकराचार्य का कथन है कि आत्मज्ञानी मनुष्य कोई कर्म नहीं करता। हाँ, बेशक उसकी अपनी दृष्टि से ऐसा ही है। क्योंकि ऐसा कोई भी कार्य नहीं जो उसे कष्टदायक मालूम हो सके, उसे तो सब कुछ लीला, क्रीड़ा और आनन्द ही प्रतीत होता है। उसके लिए कोई अवश्यकरणीय कर्तव्य नहीं, न वह कभी चिन्ता करता है और न कभी व्याकुल होता है, वह तो सारी स्थिति का राजा है। उसे तो सब कुछ किया हुआ ही सा दिखलाई देता है। न उसे उद्वेग होता है और न दुःख (शोक)। वह तो चिर नूतन, धीर और अचल, करने-धरने के ताप से सर्वथा मुक्त रहता है।

परन्तु क्या ऐसा ज्ञानी आलसी और सुस्त होता है? वैसे तो तुम चन्द्र को भी सुस्त और सूर्य को भी आलसी कह सकते हो। नैष्कर्म्य के महा आचार्य स्वयं शंकराचार्य को देखो। क्या तुम इतिहास के विस्तृत क्षेत्र में से एक भी ऐसा उदाहरण ढूँढ सकते हो जहाँ इतने अल्प काल में किसी एक व्यक्ति के द्वारा इतना अधिक काम हुआ हो? सैकड़ों ग्रन्थ रच डाले, अनेकों सम्प्रदाय स्थापित कर दीं, बहुत से राजाओं को अनु-यायी बना लिया, सारे भारतखण्ड में एक छोर से दूसरे छोर तक अनेकों शास्त्रार्थ कर डाले। उसके द्वारा कार्य का प्रचार उसी तरह होता था जैसे तारागणों से प्रकाश फैलता है अथवा फूलों से सुगंध उड़ती है।

राम अब उस महान् तत्वज्ञ के बारे में कुछ कहे बिना इस विषय को समाप्त नहीं कर सकता। मनु के शब्दों में ऐसे आत्म दर्शी की स्वराज्य आत्मिक प्रतिमा का निजी सिंहासन है। ज्ञान की ज्वाला दहक रही है, उसे भेंट चढ़ाना है—चढ़ा दो उस पर अपना सारा मेरा-तेरा, अपनी आसक्तियाँ, स्वार्थ, प्रेम और घृणा, मेरे और तेरे की कल्पना,

को दिव्य प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई थी, यह ज्ञान इन्हें कहाँ से मिला था? इसे इन्होंने स्वयं उस भंडार से प्राप्त किया था जो तुम्हारे भीतर भी है।

महर्षि मनु के पास ऐसी पुस्तकें कहां थीं, किन्तु उन्होंने हिन्दुओं को धर्माचरण पर एक सुन्दर ग्रन्थ प्रदान किया। कविश्रेष्ठ होमर के पास बहुत थोड़ी पुस्तकें थीं, तथापि उसने जो महाकाव्य इलियड एँड ओडीसी (Iliad and Odyssy) आपको दिया, उसका सभी भाषाओं में उल्था हो रहा है। अरस्तू (Aristotle) न तो एम ए था और न कोई धर्माचार्य, तथापि एम ए. के विद्यार्थियों को उसकी पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं।

क्राइस्ट और कृष्ण को दिव्य प्रेरणा (Inspiration) कहाँ से मिलती थी? भीतर से। यदि ये लोग भीतर से ज्ञान प्राप्त कर सकते थे तो क्या आप ऐसा नहीं कर सकते? अवश्य आप भी ऐसा कर सकते हैं। वह गुप्त स्रोत, वह भंडार, वह निर्झर जिससे उन्हें प्रेरणा मिली थी, तुम्हारे अन्दर भी है और ठीक उसी प्रकार। यदि यही बात है, तो उस जल के लिए क्षुधा और पिपासा क्यों जो सहस्रों वर्ष पूर्व इस दुनिया में लाया गया था और जो अब बासी हो गया है। तुम भी सीधे अपने अन्दर धंस सकते हो और [illegible] अमृत पी सकते हो। निर्झर स्रोत तुम्हारे अन्दर है।

'राम कहता है—[illegible]? वे लोग उन दिनों जीवित थे, तुम आज जिन्दा हो। सहस्रों वर्षों के रखे हुए सुरक्षित मुर्दे मत बनो। जीवित को मृतक के हाथ में मत सौंपो। दिव्य जीवन रत्नाकर सुधा तुम्हारे अन्दर है। प्राचीन लोगों की पुस्तकें जब भी पढ़ो तब उन्हें इस विश्वास से मत उठाओ कि उन पुस्तकों में दिये गये प्रत्येक शब्द के गुलाम बन जाओ। स्वयं सोचो, स्वयं चिन्तन करो। जब तक तुम इन बातों का स्वयं अनुभव नहीं करोगे तब तक

समय यह सिद्ध किया करता था कि भोजन या बातचीत करते समय मैं नीचे का जबड़ा कभी नहीं हिलाता हूँ। उसकी राय थी कि हमेशा ऊपर का ही जबड़ा चलता है, और नीचे का नहीं। इस विषय पर डाक्टर जोहन्सन से उसका बड़ा विवाद हुआ था। उसने इस भ्रान्त कथन की पुष्टि के वह बड़ा दुराग्रही था। आजकल प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि जब हम बातचीत करते या खाते हैं, तब सदा नीचे का ही जबड़ा चलता है और ऊपरवाला कभी नहीं चलता। हाँ, जब हम पूरा सिर घुमाते हैं तब बेशक ऊपरी जबड़ा चलता है। तथापि उसका पक्ष था कि नीचे का जबड़ा चलता है, ऊपर का नहीं।

जहाँ तक व्यावहारिक क्रिया का सम्बन्ध था, वह बिलकुल ठीक था, किन्तु स्वयं अपना अनुभव, स्वयं अपनी कार्य-शैली, स्वयं अपना जीवन वह वर्णन नहीं कर सकता था। आप जानते हैं कि किसी काम का करना एक बात है और उस काम की विधि का विज्ञान प्राप्त करना दूसरी बात है। हर एक व्यक्ति अंग्रेजी बोलता है, किन्तु अंग्रेजी व्याकरण थोड़े ही लोग जानते हैं। हर एक व्यक्ति किसी न किसी रूप में तर्क करता है किन्तु तर्कशास्त्र थोड़े ही लोग जानते हैं अथवा आनुमानिक या आनुषङ्गिक तर्कशास्त्र (Deductive or Inductive Logic) का अध्ययन बहुत थोड़े ही लोग करते हैं। इसी तरह, आदर्श जीवन व्यतीत करना एक बात है और उसके तत्त्वज्ञान को निरूपण करने की योग्यता, उसके लिए युक्तियाँ उपस्थित करने की योग्यता, दूसरी चीज़ है। लोग यही भूल करते हैं। वे आचार्यों के शारीरिक या व्यक्तिगत आचरण को उनके उपदेशों की सुन्दरता मान बैठते हैं और आचार्यों के गुलाम बन जाते हैं। 'राम कहता है, सावधान, सावधान!

हजरत ईसा के पास पुस्तकें न थीं। तथापि बड़े-बड़े शास्त्री और महामहोपाध्याय बाइबिल में लिखे उपदेशों की व्याख्याओं पर माथापच्ची किया करते हैं। हजरत मोहम्मद ने उत्तमोत्तम बातें कही हैं। इन लोगों

सचमुच तुम मजनू बनना चाहते हो तो तुम्हें मजनू की प्रेयसी लेने की जरूरत नहीं, तुममें मजनू का असली आन्तरिक प्रेम होना चाहिए। प्रेम के उस पात्र की तुम्हें जरूरत नहीं, तुम्हें तो आवश्यकता है उतने ही तीव्रतम प्रेम की। तुम्हारा अपना स्वतंत्र प्रेमपात्र हो सकता है, तुम अपनी नायिका आप चुन सकते हो, तुम आप अपनी प्यारी चुन सकते हो, किन्तु तुममें भावना और प्रेम की वही तीव्रता होनी चाहिए जो मजनू में थी। सच्चा मजनू बनने का एकमात्र उपाय यह है।

इसी तरह 'राम' तुमसे कहता है—यदि तुम ईसा, बुद्ध, मोहम्मद या कृष्ण बनना चाहते हो, तो तुम्हें उन बातों की नकल करने की आवश्यकता नहीं जो उन्होंने किये थे; उनकी आचरण-पद्धति के दास होने की तुम्हें जरूरत नहीं। यह आवश्यक नहीं कि तुम अपनी स्वतंत्रता उनके कृत्यों और कथनों के हाथ बेच डालो, तुम्हें तो उनका चारित्र्य बल उपलब्ध करना होगा, तुम्हें उनकी भावनाओं की अतिशयता प्राप्त करना होगी, तुम्हें उनकी गम्भीर प्रकृति, उनकी सच्ची शक्ति प्राप्त करना होगी। यदि तुम अपने जीवन में वही भाव व्यक्त कर सको तो अभी अभी तुम्हारे समक्ष जो परिस्थिति और वातावरण है वह [illegible] बदल जायगा। क्राइस्ट का यदि आज जन्म होता तो वह क्या करता? क्या वह फिर अपने को सूली पर चढ़ाता? नहीं। तुम ईसा बनकर भी जीते रह सकते हो। क्राइस्ट ने अपने विश्वासों के पीछे अपनी देह को सूली पर लटकवाया, और शोपेन्हार ने अपने विश्वासों के लिए अपनी देह को जीवित रक्खा। और कभी-कभी अपने विश्वासों के पीछे जीना अपने विश्वासों के लिए मर जाने से अधिक कठिन होता है।

बस, अब इस प्रस्तावना का मर्म यों व्यक्त किया जा सकता है—"हर एक वस्तु का विचार उसके गुण-दोषों के अनुसार करो, आचार्य के व्यक्तित्व को आचार्य के जीवन को उसके उपदेशों से मत मिलाओ। उसके उपदेश और जीवन को हमें पृथक् पृथक् समझना चाहिए।'

आ सकता है, जब उनका विवाह विच्छेद हो जाता है। दोनों फिर अलग-अलग ब्याह करते हैं। बन्धन कहाँ है? क्या तुम उनको स्थिर, अचल रख सकते हो? भाई और बहन एक ही माता-पिता से पैदा होते हैं और उसी एक घर में अपना बचपन बिताते हैं। वे साथ-साथ बँधे हुए हैं। उनमें एक पारिवारिक ग्रन्थि है। लड़का आस्ट्रेलिया चला जाता है और वहीं अपने नाते जोड़ लेता है। बहन फ्रांस चली जाती है और एक फ्रांसीसी नारी बन जाती है। बन्धन कहाँ है? अब हमारा प्रश्न है—यदि पुनर्जन्म सत्य है, तो क्या वह पारिवारिक बन्धनों को तोड़नेवाला नहीं? पारिवारिक बन्धन तो इस संसार में भी विद्यमान नहीं, फिर वह (पुनर्जन्म) तोड़ेगा क्या? वह पारिवारिक बंधनों का विच्छेदक नहीं, क्योंकि पारिवारिक ग्रन्थियाँ कहीं हैं ही नहीं।

किन्तु यदि हम मान भी लें कि वस्तुतः पारिवारिक ग्रंथियों का कुछ अस्तित्व है और हम उन्हें इस जीवन में कुछ समय तक बनाये रख सकते हैं, तो भी पुनर्जन्म उन्हें तोड़ता नहीं। इस दूसरे पहलू से विचार करने पर पुनर्जन्म उन बन्धनों का विच्छेदक नहीं होता। मान लीजिये कि आपके बहुत से बच्चे हैं। एक उनमें से मर जाता है। तुम तो पारिवारिक बन्धनों को स्थिर रखना चाहते हो, किन्तु एक छिन जाता है। लो, इस दुनिया से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। किन्तु कुछ लोग सोचते हैं, इस त्रुटि का मार्जन होगा, जो धागे टूट गये हैं वे वैकुण्ठ में जुट जायँगे। यदि वे किसी दूसरे लोक में जुट सकते हैं, और यदि आप चाहते हैं कि फिर उनकी पूर्ति हो जाय, तो इन बन्धनों का जुट जाना उचित है, पर यह जरूरत नहीं कि आप एक काल्पनिक वैकुण्ठ के अस्ति[illegible]को मानें, जिसका उल्लेख कहीं किसी भूगोल पुस्तक में नहीं मिलता और न जिसका पता कोई पदार्थ-विज्ञान बता सकता है। यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रों से आपका सम्बन्ध अधिक लम्बे काल तक बना रहे, तो पुनर्जन्म के नियम के अनुसार यह

अब पहला प्रश्न यह है: "यदि पुनर्जन्म सत्य है तो क्या इसके द्वारा पारिवारिक बन्धन नहीं टूट जाते? और प्रश्न का एक दूसरा भाग भी है, जो हम जीवन में एक साथ जुड़े हुए हैं, क्या वे फिर सूक्ष्म जगत्—परलोक में नहीं मिलेंगे?"

यह एक सुन्दर प्रश्न है। हम इसके हर एक अंग पर क्रम से विचार करेंगे। "यदि पुनर्जन्म सत्य है, तो क्या यह पारिवारिक बन्धनों का टूट जाना नहीं है?"

राम केवल इतना जानना चाहता है कि क्या इस संसार में सचमुच पारिवारिक बन्धन हैं? क्या आप पारिवारिक बन्धनों से बँधे हैं? एक मनुष्य के एक लड़का हुआ, जो अपने बाप के साथ तभी तक रहता है जब तक नाबालिग है। बच्चा सयाना होता है, अच्छी आमदनी का पद पा जाता है और अपने बाप से अलग रहना शुरू कर देता है। भला, लड़का के वेतन से बाप क्यों लाभ उठावे? तुरन्त बन्धन तड़ाक से तोड़ दिया जाता है। लड़के के साथ अपना स्वतन्त्र एक कुटुम्ब हो जाता है। हो सकता है कि पुत्र भारत, जर्मनी या किसी दूसरे देश में चला जाय और पिता किसी दूसरे देश में। बताओ, पारिवारिक बन्धन कहाँ है?

हाँ, पारिवारिक बन्धन हैं किन्तु केवल नाम के। मैं जॉन एस. (John S) हूँ, मेरा पिता जार्ज एस (George S) था। नाम, केवल नाम। नाम में क्या धरा है? आओ, देखें कि क्या सचमुच कोई बन्धन हैं?

एक लड़का यहाँ पैदा हुआ और एक लड़की कहीं अन्यत्र पैदा हुई। एक अमेरिकन है, दूसरी जर्मन। उनका विवाह होता है। कन्या का पारिवारिक बन्धन किसी एक जगह था, लड़के का पारिवारिक बन्धन किसी दूसरी जगह था, और उनका विवाह हुआ। लो, पुराने बन्धन [illegible] गये। अब एक नई गाँठ लग गई, और फिर एक ऐसा समय

समझते हैं कि वे सबके एक साथ उठें-बैठेंगे और रहेंगे। 'राम' चाहता है कि कृपाकर आप तनिक सोचें, सच के लिए आप तनिक विचार करें। जहाँ आप परिच्छिन्न होते हैं, क्या वहाँ कभी पूर्ण आनन्द हो सकता है? ससीमता में क्या कोई सच्चा सुख हो सकता है? असम्भव, असम्भव। यदि आपके स्वर्ग में आपके प्रतियोगी विद्यमान हों,—वे सब जो अतीत में मर चुके हैं, और जो भविष्य में मरेंगे, और वे सब जो आज भारतवर्ष में, आस्ट्रेलिया में, अमेरिका में, अथवा कहीं और भी मर रहे हैं, तो क्या आपको उनसे सुख मिल सकता है? आपने सुना होगा कि सेलकर्क क्या कहता था—

"I am monarch of all I survey,
My right there is none to dispute"

"जहाँ तक जाती है दृष्टि उस सबका सम्राट् हूँ, मैं"
मेरे अधिकार का प्रतिवादी कहीं कोई नहीं!

जब कभी आप गाड़ी में बैठते हैं, तो सारी गाड़ी केवल अपने ही लिए प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। जब दूसरे लोग भीतर आ जाते हैं, तब आप कठिनता से ही उठते हैं। आप अपने कमरे में बैठे हैं और कोई आपसे मिलने आता है, झट आप नौकर से कहलवा देते हैं कि आप घर पर नहीं हैं, बाहर गये हैं।

तुम्हारे पास एक घर और कुछ जायदाद है, और एक दूसरे आदमी के पास भी वैसा ही घर और सम्पत्ति है। अब बाइबिल तथा वेदों के सारे उपदेशों का अनादर करते हुए तुम्हारी इच्छा है कि तुम्हारे पास उस आदमी से अधिक सम्पत्ति हो जाय। तुम चाहते हो कि वह तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी बराबर न हो सके, वह तुम्हारे अधीन हो जाय। क्या यह तथ्य नहीं है कि कुछ ईसाई, असली ईसाई नहीं, किन्तु गलती से ईसाई कहे जानेवाले, यदि उनके साथ एक ही जहाज पर कोई बौद्ध, मुसलमान अथवा हिन्दू यात्री बैठ जाता है तो, वे उसकी उप-

मृत्यु के बाद आसानी से चल सकता है, क्योंकि उसके अनुसार मनुष्य स्वयं आप अपने भाग्य का विधाता है। आप स्वयं अपने व्यक्तिगत बन्धन और व्यक्तिगत नाते-रिश्ते बनाते हैं। मरते समय यदि आपका किसी पर गहरा प्रेम है तो उससे दूसरे जन्म में आप उस व्यक्ति को किसी दूसरे शरीर में उत्पन्न और अपने से सम्बद्ध पायेंगे। यदि अपने इस वर्तमान जन्म में आप किसी पुरुष विशेष को नहीं देखना चाहते हैं, आप उससे कोई भी सरोकार नहीं रखना चाहते हैं, तो पुनर्जन्म के नियम के अनुसार आपके दूसरे जन्म में आपके साथ उसका कोई वास्ता न रहेगा। पुनर्जन्म का नियम यह नहीं कहता कि मित्र और शत्रु, जिन लोगों के संसर्ग में आप नहीं आना चाहते, अथवा जिन लोगों को आप बड़ी उत्सुकता से अपने साथ रखना चाहते, मृत्यु के बाद वे बलात् आपपर ऊपर थोप दिये जायँगे। वेदांत यह नहीं कहता कि जिनकी उपस्थिति आपको घृणास्पद है, जिनकी उपस्थिति आपको इतनी विरस मालूम होती है, वे बलात् आपके सम्बंधी बनाये जायँगे। यदि किसी नारी को अपने पति द्वारा तलाक दिया गया है और वह उसे फिर कभी नहीं देखना चाहती, तो कर्म के नियम के अनुसार वह पति उसे फिर कभी परेशान नहीं करेगा। जिनको वह देखना चाहती है, जिनसे वह अपना सम्बंध रखना चाहती है, उन्हीं को वह अपने दूसरे जन्म में समझेगी-बूझेगी।

इस विषय से सम्बंध रखनेवाली अनेक भ्रांतियाँ हैं। एक के बाद एक क्रमशः उन सबको यहाँ उठाया जायगा। पहले हम स्वर्ग के विषय को लेंगे, जिसका यूरोप और अमेरिका व्यापक तौर से भ्रान्त, उल्टा अर्थ लगाते हैं। क्या हम उसे ईसाई स्वर्ग (Christian heaven) का नाम देंगे? नहीं, हम उसे पादड़ियों का स्वर्ग (Churchian heaven) कहेंगे। किन्तु क्या स्वर्ग की कल्पना में ही पक्षपात की पुट नहीं है? स्वर्ग शब्द से प्रायः लोग एक ऐसा स्थान

यदि वह परमेश्वर मेवों पर रहेगा तो बेचारे गरीब की सदीं हो जायगी। स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है। परमेश्वर तुम्हारे अन्दर है। देखो तो सही!

अपने आपको उस आनन्दमय ईश्वरीय ज्ञान की अवस्था में लाओ, परमेश्वर से पूर्ण अभिन्नता की अवस्था में अपने आपको डाल दो, अथवा यों कहिये कि निर्वाण की दशा में प्रवेश करो, उस ईश्वरीय कल्याणमय दशा को प्राप्त करो और फिर तुम स्वयं स्वर्ग रूप हो, स्वर्ग में आना जाना कैसा! उस स्थिति में तुम सारी दुनिया से एक हो। वहाँ तुम मृतक और जीवित और इस पृथिवी पर जिन लोगों के आविर्भाव की आशा है, उन सबसे अभिन्न हो जाते हो। स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है, और इसी प्रकार से हम स्वर्ग में सबसे मिलते हैं। जीवन मुक्त, इसी जीवन में ही मुक्त रहनेवाला मनुष्य सदा स्वर्ग में रहता है, वह सभी मरनेवालों और जीनेवालों से तदात्म रहता है। इतना ही नहीं, भविष्य में इस दुनिया में जिन लोगों के आने की आशा है उन सबसे भी वह एक है। वह ऐसा अनुभव करता और मानता है कि सभी तारागण, सभी ज्ञात प्राणी उसके अपने आत्मा हैं। वह अनुभव और भान करता है कि "मैं सच्चा परमेश्वर हूँ, सच्चा परम पुरुष हूँ स्वयं तत्वस्वरूप हूँ, सारभूत हूँ, अद्वैत परमेश्वर हूँ। मैं सर्व हूँ और इस प्रकार 'सर्व' होता हुआ मैं स्वर्ग में हूँ, और स्वर्ग में मैं हर एक व्यक्ति से मिलता हूँ।"

राम अब एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कहनेवाला है। लोग इस दुनिया में अपनी इच्छित वस्तुओं के लिए लालायित रहते हैं रात-दिन उन्हें पाना चाहते हैं किन्तु पाते नहीं। यह क्या बात है? वे उनको क्यों कर नहीं पाते और कैसे पा सकते हैं? लोगों के दिल टूट जाते हैं, प्रेम में हताश होने पर, इच्छा के विफल होने पर विषय वासनाओं के मारे जाने पर लोग कुम्हलाने लगते हैं और कुम्हलाते कुम्हलाते एक दिन ऐसा आता है जब उनका सारा जीवन ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। ऐसा क्यों

स्थिति से घृणा करते हैं ? राम यह बात स्वयं अपने अनुभव से कहता है। वे उसकी उपस्थिति से घृणा करते हैं। उसकी उपस्थिति से मानो उनका सुख मिटने लगता है। अब यदि स्वर्ग में तुम्हें अपने चारों ओर इसी प्रकार के लोग देखना पड़ें, जो तुमसे कहीं अधिक श्रेष्ठ हों, जो ईसामसीह और बुद्ध के समान हों, जिन्हें तुम स्वयं अपने से बहुत बड़ा मानते हो, महात्माओं के समान हों जो तुम्हारी अपेक्षा अत्यधिक उन्नत अवस्था में हों, तो क्या तुम उस स्थिति में सुखी रह सकोगे ? क्या उस स्थिति में तुम सुख का अनुभव कर सकोगे ? तनिक इस पर विचार करो, एक क्षण भर इस पर चिन्तन करो।

जहाँ कहीं भेद होता है, वहाँ सुख नहीं रह सकता। असम्भव, यह असम्भव है। ऐसी कौन सी चीज है जो तुम्हारी प्रफुल्लता को नष्ट कर देती है ? वह है दूसरे का अस्तित्व। प्रत्येक एकदम निराला होना चाहता है। हर एक व्यक्ति एक, अद्वितीय द्वन्द्वहीन होना चाहता है। अतः तुम्हे उस प्रकार के स्वर्ग से कोई सुख नहीं मिल सकता, जो तुमने भ्रमवश मान रक्खा है, जो इञ्जील ने तुम्हारे लिए प्रदान किया है।

अच्छा, अब हम इञ्जील की किस प्रकार ऐसी टीका कर सकते हैं जिससे वह कुछ युक्तिसंगत उचित प्रतीत हो ? इञ्जील में हमसे कहा जाता है—हम स्वर्ग में मिलेंगे। हम सबके सब स्वर्ग में मिलेंगे। स्वर्ग में अपने मित्रों से हम मिलेंगे। इसका क्या अर्थ है ? वस्तुतः इसका क्या अभिप्राय है ? इसका ठीक-ठीक अर्थ लगाओ इसे समझो। क्या तुम नहीं जानते कि उसी इञ्जील में जिसमें लिखा है कि हम सब स्वर्ग में मिलेंगे यह भी लिखा हुआ है, "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है।" परमेश्वर का राज्य, सच्चा स्वर्ग तुम्हारे 'अन्दर' है, तुमसे 'बाहर' नहीं। अपने से बाहर स्वर्ग की कल्पना न करो। उसे आकाश में या नक्षत्रों के बीच में न ढूँढ़ो। परमेश्वर पर दलील दया करो।

रहा है। इसका कारण यह है कि उन्होंने 'राम' के पिछले व्याख्यान नहीं सुने हैं, जो हरमेटिक ब्रादरहुड के भवन में दिये गये थे। अच्छा, यदि तुम इसे इस समय नहीं समझते हो, तो यह विषय फिर कभी उठाया जायगा।

एक बात और। अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जो अपने रिश्ते, अपने नाते बनाये रखना चाहते हैं, वे उन सम्बन्धों को चिरस्थायी करना चाहते हैं। उच्च स्वर से घोषित कर दीजिये, हर जगह ढोल पीट दीजिये कि लौकिक सम्बन्धों, सांसारिक सम्पर्कों को स्थिर रखने और उन्हें स्थायी बनाने की इच्छा पागलपन का विचार है। यह संभव नहीं, संभव नहीं। यह तो आशा के विरुद्ध आशा करना है। झूंठी आशा है। आप अपने सांसारिक सम्बन्धों और लौकिक बन्धनों को स्थायी नहीं बना सकते। कोई भी सांसारिक वस्तु नित्य नहीं बनाई जा सकती। इस सत्य को अपने हृदयों में पैठने दीजिये, इसे अपने अन्तःकरणों में घर करने दीजिये कि लौकिक बन्धनों और सम्बन्धों को स्थायी बनाने की चेष्टा करना पागलपन का विचार है। राम बार-बार इसे दोहराता है कि भाई! तुम ऐसा नहीं कर सकते। इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है। इस संसार में कोई चीज नित्य नहीं है। एक मात्र नित्य वस्तु तुम्हारे भीतर परमेश्वर है, चिरन्तन परमेश्वर है, जो स्वयं तुम हो, चिरन्तन सत्य है जो स्वयं तुम हो। यह देह स्थायी नहीं बनाई जा सकती। यह क्षुद्र शरीर नित्य स्थायी नहीं बनाया जा सकता। यदि तुम अरब-खरब वर्ष भी जीते रहो, तो भी मृत्यु तो आवेगी ही। सूर्य एक दिन मरता है, पृथिवी एक दिन मरती है तारे मरते हैं। इनका अर्थ है परिवर्तन। इन सबको बदलना पड़ता है, ये नित्य नहीं बनाये जा सकते, जैसे आपका शरीर क्षण-क्षण बदलता रहता है। सात साल के बाद तो वह बिल्कुल नया हो जाता है, पूर्णतः नूतन शरीर बन जाता है।

इसी तरह तुम्हारे संबंध, तुम्हारे बंधन बदलते रहते हैं। वे नित्य

कर्म के नियम के अनुसार, (राम यहाँ कर्म के नियम की व्याख्या करनेवाला नहीं है, किन्तु उसके केवल उस एक अंश की चर्चा करेगा जिसका सम्बन्ध इस विचाराधीन विषय से है) जब तुम वस्तुओं की इच्छा करते हो, जब तक उनके लिए तुम्हारे हृदय में उत्कट इच्छा और तीव्र लालसा विद्यमान रहती है, वे तुम्हें नहीं दी जातीं किन्तु तीव्र लालसा और उत्कट इच्छा करने के कुछ काल के अनन्तर चाहने, माँगने और इच्छा करने के बाद एक ऐसा समय आता है जब तुम उस इच्छा, उस अभिलाषा से, उस सङ्कल्प से ऊब जाते हो, और अपना मुँह मोड़ लेते हो, एकदम निराश और खिन्न हो जाते हो। बस, तभी वह (इच्छित वस्तु) तुम्हारे पास चली आती है। ही कर्म का नियम है।

यह तो आप जानते ही हैं कि मनुष्य को उन्नति करने के लिए अपना एक पैर ऊपर उठाना और दूसरा नीचे करना पड़ता है। जैसे चलने में एक पैर को ऊपर उठाना और दूसरे को नीचे गिराना होता है। इसी तरह कर्म के नियम की शक्तिमत्ता के अन्तर्गत आपकी इच्छाओं की कृतकार्यता और पूर्ति के लिए उस समय का आना जरूरी है कि जब आप उनसे ऊपर उठें, इच्छाओं को त्याग दें। इसी तरह इच्छा से ऊपर उठने पर इच्छा त्याग देने से इच्छा की पूर्ति होती है। कर्म के नियम के व्याख्याता साधारणतः इस प्रश्न के धन-पहलू (positive side) पर अधिक ज़ोर देते हैं और ऋण-पहलू (negative side) की उपेक्षा करते हैं। 'राम' तुमसे कहता है कि तुम्हारी सारी इच्छायें जरूर पूर्ण होंगी, तुम्हारी सारी अभिलाषायें अवश्य सफल होंगी। हरएक वस्तु, जिसकी तुम कामना करते हो, तुम्हारे सामने अवश्यमेव लायी जायगी। किन्तु एक शर्त है। उसकी प्राप्ति से पूर्व तुम्हारा एक ऐसी स्थिति में पहुँचना जरूरी है जिसमें तुम उस इच्छा को त्याग देते हो। और जब तुम इच्छा त्याग दोगे, तभी वह पूरी होगी। 'राम' का खयाल है कि नियम का यह अंश सबकी समझ में नहीं आ

तुम्हारे सम्बन्धियों, रिश्तेदारों और मित्रों का मिलन और वियोग चलता रहता है। तुम सदा-सर्वदा एक साथ साथ-साथ नहीं रह सकते। यदि यह बात है तो फिर बच्चों का सा खेल क्यों करते हो? जो सदा टिकनेवाला है, जो नित्य और शाश्वत है, फिर क्यों नहीं उसी से सबसे अधिक सम्बन्ध जोड़ते। बल्कि सम्बन्धों की अपेक्षा जो नित्य है उसी के लिए फिर अधिक चिन्ता क्यों नहीं करते? उसी नित्य-स्थायी तत्व का अधिक विचार क्यों नहीं करते? जिससे तुम पृथक् नहीं हो सकते, उसे पाने और अनुभव करने का यत्न क्यों नहीं करते? अरे! उस स्थायी तत्व, वास्तविक नित्यता के बलिदान का यत्न क्यों करते हो? शीघ्र टूटनेवाले अस्थायी नातों के पीछे उस असली तत्व की कुर्बानी क्यों करते हो?

भारतवर्ष में एक नवविवाहिता युवती थी। वह अपनी सास और अपनी ननदों के साथ बैठी हुई मज़ेदार गपशप कर रही थी। इस नई दुलहिन का पति उस समय उपस्थित नहीं था वह कहीं गया था। इस नई दुलहिन को ननदों ने इसके पति के विरुद्ध कुछ अयोग्य वचन कहे। 'राम' वहाँ मौजूद था। 'राम' ने इस दुलहिन के मुख से ये मधुर शब्द निकलते सुने। उसने कहा, 'तुम्हारे लिए, तुम्हारे जिन उन (मेरे पति) के साथ तुम्हें केवल दो-चार दिन रहना है मैं उनसे जिसके साथ मुझे अपनी सारी जिन्दगी बितानी है, बिगाड़ करके बच्चों की सी नादानी नहीं करूँगी।'

कम से कम उस दुलहिन जैसी, उस महिला जैसी बुद्धि तो रक्खो। ये सब सांसारिक बन्धन, ये लौकिक नाते-रिश्ते सदा न टिके रहेंगे। तुम्हें अपना सारा जीवन उस सच्चे आत्मा के साथ बिताना है जो नित्य है। तुम उससे सम्बन्ध नहीं तोड़ सकते। इन केवल वर्तमान के लिए तुम्हें सच्चे आत्मा से नाता नहीं तोड़ना चाहिए। तुम अपने आपको बेचते क्यों हो? तुम ऐसा जीवन क्यों बिताते हो, जो तुम्हें

हूँ, मैं अपने पूर्वजन्मों को जानता हूँ, मैं देखता हूँ कि जिस वंश का मैं हूँ वह सदा से भिक्षुओं का वंश रहा है। इसका दृष्टान्त इस तरह दिया जा सकता है।

यह एक सड़क है और यह एक दूसरी सड़क आई है। बुद्ध भगवान् कहते हैं—महाराज, तुम अपने पूर्वजन्मों से उस राह से चलते आये हो, और मैं इस राह से चला आ रहा हूँ, और इस जन्म में हम लोग चौराहे पर मिल गये हैं। अब मुझे अपनी राह जाना है और तुम्हें अपनी राह जाना है।

बन्धन कहाँ है? सम्बन्ध कहाँ है? आप कहते हैं कि आपके अपने बाल बच्चे हैं। आप 'राम' को क्षमा करेंगे यदि वह ऐसी बातें कहता है जो इस देश की सभ्यता के द्वारा अशास्त्रीय समझी जाय। आप कहते हैं कि ये बच्चे आपके हैं। आप कहते हैं कि यह मेरा पुत्र है, मेरे मांस का मांस और रक्त का रक्त, मेरी हड्डी की हड्डी। अरे, यह तो स्वयं मेरी आत्मा है, यह मेरा पुत्र है और प्यारा दुलारा बेटा, नन्हा सा मनोहर बच्चा! और तुम उसे अपने हृदय से लिपटाते हो, तुम अपने गले लगाते हो। किन्तु तनिक अपने तत्त्वज्ञान की समीक्षा तो करो। यह क्या तुम्हारा है? क्या तुम चाहते हो कि यह गाँठ सदा स्थायी बनी रहे। तुम इस सम्बन्ध को अनन्त काल तक चलाना चाहते हो। अब कृपया सत्य के नाम पर उत्तर दो कि यदि बच्चा आपका पुत्र है और आप उसकी देह से पैदा होने के कारण आप अपने इस सम्बन्ध को स्थिर रखना चाहते हैं तो इन जुओं का क्या होगा? क्या ये तुम्हारी देह से नहीं पैदा हुए हैं? क्या ये तुम्हारे पसीने से उत्पन्न नहीं हैं? क्या ये तुम्हारे खून के खून नहीं? क्या इनका खून तुम्हारे बदन से नहीं लिया गया है? क्या इनका समग्र जीवन तुम्हारे जीवन से नहीं बना है? तनिक उत्तर दीजिये। एक तरह के बच्चे की हत्या करना, एक तरह के बच्चों को नष्ट करना और दूसरी तरह के बच्चों को चूमना-चाटना, इस पर सारे प्रेम

शुद्र बनाता है ? उस अन्तरंग परमेश्वर को क्यों नहीं अनुभव करते, सच्चे आत्मा से क्यों अलग होते हो ? ज़रा बुद्धिमान् बनो !

बुद्ध भगवान् के पास एक आदमी पहुँचा, और उनसे उनके पिता के महल में चलने के लिए कहने लगा। आप जानते हैं कि वही बुद्ध भगवान् जो किसी समय राजा थे, राजकुमार थे, उस समय भिक्षु बन गये थे। उन्होंने सब कुछ त्याग दिया और भिक्षु हो गये। भिक्षु के बाने में वे यत्र-तत्र घूमते फिरते थे, किसी से कुछ माँगते नहीं थे। यदि उनके कमण्डल में, जिसे वे अपने हाथ में लिये रहते थे, कोई कुछ डाल देता तो वाह-वाह, अन्यथा वे शरीर के लिए, इस सांसारिक जीवन के लिए तिनका भर भी परवाह नहीं करते थे। वे अपने पिता के राज्य में गये और भिक्षु के बाने में वहाँ की सड़कों पर घूमने लगे। उन्हें भिक्षु कहना गलती थी। वह फकीरी नहीं वह तो शहंशाही है। जो कोई वस्तु नहीं खोजता, जो कोई चीज नहीं मांगता, यदि वह नष्ट हो जाय तो क्या ? नष्ट हो जाने दो, क्या परवाह है भोजन या वस्त्र माँगने के लिए वह कभी तुम्हारे पास नहीं आता, कभी नहीं आता।

इसी भेष में वे सड़कों पर घूम रहे थे। उनके पिता ने यह हाल सुना, वह उनके पास आया, और बिलखता-रोता हुआ बोला, "बेटा ! मेरे प्यारे कुमार ! मैंने ऐसा कभी नहीं किया, तुम जो पोशाक पहने हो वह मैंने कभी नहीं पहनी। मैं ही क्यों, मेरे पिता अर्थात् तुम्हारे प्रपिता ने साधुओं का यह भेष कभी नहीं धारण किया, तुम्हारा प्रपितामह भिक्षु बनकर कभी सड़कों पर नहीं घूमे। हम लोग राजा रहे हैं, तुम भी राजघराने के हो, फिर तुम यह फकीरी बाना धारण करके आज हमारे वंश को क्यों ज़लील और लज्जित कर रहे हो ? दया करके ऐसा न करो, दया करके ऐसा न करो। मेरे सम्मान की कुछ तो रक्षा करो।"

मुसकुराते हुए बुद्ध भगवान ने उत्तर दिया, उन्होंने हंसते हुए कहा, "महाराज ! महाराज ! मैं जिस वंश का हूँ मैं उसे खूब देखता

हैं कि आप विश्वविद्यालय में तो पढ़ाते हैं, किन्तु आप अपने छोटे बच्चों, अपनी स्त्री, और अपने नौकरों को नहीं पढ़ाते ? आप अपनी दादी और अपने चचेरे भाइयों, अपनी भावजों को क्यों नहीं पढ़ाते ? यह क्या बात है ?" उसने कहा कि वे मेरे व्याख्यान को समझ नहीं सकते। तब उसे निम्नलिखित बातें समझायी गई थीं—

देखो। ये सचमुच तुम्हारे पड़ोसी नहीं हैं। ये नौकर-चाकर, यह दादी, यह स्त्री और ये बाल-बच्चे और तुम्हारा यह कुत्ता भी तुम्हारा पड़ोसी नहीं है। यद्यपि कुत्ता तुम्हारा रात-दिन का साथी है, कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता अज्ञानी की दृष्टि से यह आपका सबसे बड़ा साथी हो सकता है किन्तु आप जानते हैं कि कुत्ता, नौकर-चाकर और मूर्ख चाची और दादी आपके पड़ोसी नहीं हो सकते। आप कौन हैं? आप शरीर नहीं हैं, आप शुद्ध आत्मा हैं, किन्तु यूरोपीय दार्शनिक होने के कारण आप इसे स्वीकार नहीं करते। अच्छा आप मन हैं तब आपके पड़ोसी भी वही हैं जो सदा [illegible] उसी उच्च स्तर में रहते हैं जहाँ आपका मन रहता है। [illegible] करने में [illegible] पर [illegible] करते हैं वही [illegible] आपका [illegible] विषय में [illegible] अपने [illegible] कि [illegible] (re [illegible] करने से होते हैं [illegible] समय [illegible] में बैठा रहता है [illegible] हैं किन्तु वे आपके लिए [illegible] भी नहीं [illegible] होते हैं [illegible] उतनी ऊँचाई पर आपके [illegible] होते हैं [illegible] अपने घरों में बड़ी विपद पड़ी है [illegible]

की चर्चा करना कितना अन्याय है, कैसा असंगत है! अपने तर्क को देखो। "राम" का यह अभिप्राय नहीं है कि आप अपने बच्चों के प्रति निष्ठुर हो जायँ और आप उनकी जरूरतों की ओर ध्यान न दें। राम यह बिल्कुल नहीं चाहता। "राम" का उपदेश है कि आपको सम्पूर्ण संसार अपना आत्मा समझना चाहिए, और वैसे ही अपने बच्चों को भी आपको अपनी आत्मा मानना चाहिए। आप राम की बातों का अनर्थ न करना। 'राम' केवल यह कहता है कि "आपके पारिवारिक बन्धन आपकी अपनी उन्नति को न रोकने पायें। अपने पारिवारिक सम्बन्धों को अपने मार्ग में बाधक न बनने दो। वे आपकी अग्रसर गति में बाधा क्यों डालें?"

जब इस शरीर ने, तुम्हारी ही आत्मा ने, जिसे तुम "राम" कहते हो, सन्यास ग्रहण किया था, अपने पारिवारिक सबंध और अपने लौकिक पद का परित्याग किया था, तब उनसे कुछ लोगों ने कहा था— "स्वामी जी, स्वामी जी! यह क्या बात है कि आपने अपनी स्त्री, बच्चों, नातेदारों, और उन विद्यार्थियों के हकों का कोई ख्याल तक नहीं किया, जो आपसे सहायता और उपकार की आशा रखते थे, आपने उन लोगों के दावों का बिल्कुल लिहाज नहीं किया?' यह प्रश्न पूछा गया था। "राम" पूछता है—' आपका पड़ोसी कौन है?' तनिक देखिये। जिस मनुष्य ने 'राम' से यह प्रश्न किया था वह विश्वविद्यालय में राम का सह-अध्यापक था। राम ने उससे कहा— आप एक अध्यापक हैं, आप कालेज में दर्शन-शास्त्र पढ़ाते हैं, क्या आप यह कह सकते हैं कि आपकी स्त्री और बच्चों में भी उतनी ही विद्या है जितनी आपमें? क्या आप कह सकते हैं कि आपकी चाची और दादी भी उतनी ही विद्वान हैं जितने आप? क्या आपके चचेरे भाइयों को भी उतना ही ज्ञान है?" उसने उत्तर दिया—' नहीं, मैं अध्यापक हूँ, उनमें मेरी जितनी विद्या कहाँ?" "राम" ने कहा— अच्छा, यह क्या बात

किन्तु क—ग में क—ख से अधिक समानता है, इसलिए क ख की अपेक्षा ग की ओर अधिक आकृष्ट होगा।

बस, इसी प्रकार आपके पारिवारिक बंधन टूटते रहते हैं, बार-बार टूटते और जुड़ते हैं। इस भांति प्रेम का अर्थ केवल इतना है कि आप अपने आपका कुछ अंश किसी दूसरे मनुष्य में अनुभव करते हैं। जब कोई व्यक्ति पूर्णतया और एक मात्र आपका प्रतिरूप हो जायँ तब आप स्वयं प्रेम रूप बन जायँगे।

इस सिलसिले में हम एक दूसरे विषय पर पहुँचते हैं जिसे 'राम' आज नहीं उठावेगा। यह बड़े महत्व का विषय है। यह विषय है निर्भीकता। भय की सृष्टि कैसे होती है, भय का कारण क्या है? उसमें यह दिखाया जायगा कि यही आसक्ति, यही अपने बन्धनों और सम्बन्धों को सदा के लिए स्थिर रखने की इच्छा, सम्पूर्ण भय की जड़ है। लोग कहते हैं, डरो मत, डरो मत। कितनी अलौकिक बात है! मानो भय तुम्हारे वश में है और वह तुम पर हावी नहीं। भय की एक दवा बताई जायगी, किन्तु "राम" इस विषय को यहीं छोड़ता है, वह फिर कभी उठाया जायगा।

यहाँ एक कविता, जो एक उपनिषद् का भावान्तर है, पढ़ी जायगी और फिर बस। यद्यपि अनुवाद सर्वांगपूर्ण नहीं है, फिर भी उससे कुछ आशय निकल ही आयगा।

The untouched Soul, greater than all
  Worlds (because the worlds by it exist),
Smaller than subtle ties of things [illegible],
  Last of ultimatest,
Sits in the very heart of all that lives,
  [illegible] everywhere! Asleep
It roams the world, [illegible]

[illegible] पड़ोसी है, और इस प्रकार आपकी सहानुभूति सम-वेदना [illegible] और [illegible], [illegible] लोक-वासियों की ओर, जो आपके पड़ोसी नहीं हैं, [illegible] अधिक पहुँचती रहती है। आपका पड़ोसी तो वह है जो आपकी रुचि के अधिक समीप हो, जो उसी लोक में रहता हो। [illegible] आप करते हैं। आपका पड़ोसी वह नहीं है जो उसी घर में रहता है, चूहे और छिपकलियाँ भी उसी घर में रहती हैं, कुत्ते और बिल्लियाँ भी उसी घर में रहती हैं।

ऐ पाठक महोदय! अब मुझे बताओ, यदि तुम्हारे हाथ की बात हो, तो तुम कहाँ पैदा होगे? क्या आप उसी जगह, जाति या भाषा के परिवार में पैदा होंगे? नहीं, नहीं। आप तो उस कुटुम्ब में पैदा होंगे जहाँ के लोग आप जैसे विचार रखते हों, जहाँ के लोग आपके लिए आपके अनुकूल परिस्थिति और वातावरण उत्पन्न कर सकें। आप अस्त-व्यस्त घर में पैदा न होंगे। आप उग्र उपद्रवी कुटुम्ब में उत्पन्न न होंगे। इस प्रकार आप हर समय अपने मानसिक पड़ोस में वर्तमान रहते हैं। प्रेम का अर्थ क्या है? प्रेम का अर्थ केवल इतना ही है कि आप वही भावना रखते हैं जैसी कोई दूसरा रखता है। उससे अधिक कुछ नहीं। आप एक मनुष्य को प्यार करते हैं, उसका स्वार्थ, उसका आनन्द, उसका कष्ट वही है जो आपका। वही पदार्थ आपको पीड़ा पहुँचाते हैं जिनसे उसको पीड़ा होती है, जो पदार्थ उसे सुखकर लगते हैं, वही आपको भी सुख देते हैं, वही पदार्थ उसे हर्ष देते हैं जो आपको हर्षदायक हैं। यही प्रेम है, आप उसे प्रेम करने लगते हैं। आप किसी मनुष्य को उसकी खातिर प्यार नहीं करते, आप उसमें अपने आपको ही प्यार करते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। आप केवल अपने आपको प्यार कर सकते हैं। तीन मनुष्य हैं, क, ख और ग। यह क है, यह ख है, यह ग है। अथवा इसे हम रासायनिक सूत्र के रूप में भी रख सकते हैं, क और ख में कुछ समान बात है, और क तथा ग में भी कुछ समान बात है,

केन्द्र-च्युत न हो

६ जून १९०३ को कैमिल लिंस में दिया हुआ व्याख्यान

भोजन करते समय यहाँ के लोगों का ढंग यह है कि वे परस्पर खूब बातचीत करते रहते हैं, इसके विरुद्ध भारत में दूसरी ही चाल है। वहाँ भोजन करते समय कोई बातचीत नहीं की जाती। आपको जानना चाहिए कि वहाँ भोजन करते समय प्रत्येक व्यक्ति को खाने की क्रिया मानों धार्मिक भाव से करनी पड़ती है, उन्हें उसे पवित्र कृत्य बनाना पड़ता है। आपके मुख में जानेवाले भोजन के हर एक ग्रास के साथ आपको इस विचार पर ध्यान देना चाहिए कि यह ग्रास बाहरी क्षिति का प्रतिनिधि है और इस प्रकार मानो मैं सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर सम्मिलित कर रहा हूं। वहाँ लोग खाते समय निरन्तर इस विचार को अपने चित्त में रखते हैं और साथ ही ॐ जपते रहते हैं मन से अनुभव करते और समझते जाते हैं कि सम्पूर्ण संसार मुझ में सम्मिलित हो रहा है। ॐ ॐ! विश्व मुझ में समाया हुआ है, दुनिया मेरी देह है। इस प्रकार, प्रत्येक ग्रास के साथ वे आध्यात्मिक बल भी प्राप्त करते हैं। वे आध्यात्मिक और शारीरिक भोजन मानो साथ-साथ करते हैं। सारी दुनिया मैं हूं, यह मेरा ही रुधिर और मांस है। भोजन मानो सम्पूर्ण संसार का प्रतिनिधि है जो मेरा अपना ही रक्त और मांस है, कैसी पूर्ण एकता है। हिन्दुओं का इस रहस्य से घनिष्ठ परिचय है। इसीलिए ये सब विचार उनके चित्त और भावनाओं में एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार हृदय की भावुकता (emotional nature) और संकल्प शक्ति (will power) की यहाँ तक पुष्टि हो जाती है कि तुरन्त

Behold divinest spirit, as it is
Glad beyond joy existing outside life.
Beholding it in bodies, bodiless
Amid impermanency permanent.
Embracing all things, yet in the midst of all
The mind enlightened casts its grief away.

Om ! Om !!

निर्लेप-आत्मा, लोक लोकान्तरों में सबसे महान् (क्योंकि लोक तो उसी में टिके हैं), छोटी से छोटी चीजों की सूक्ष्म ग्रंथियों से भी सूक्ष्म, सबसे अन्तिम से भी अन्तिम, प्राणियों के हृदय में बैठा है। आराम करता हुआ भी, वह सर्वत्र भ्रमण करता है, सोता हुआ भी वह संसार में घूमता है, अनिद्रित ! कैसे कोई उस दिव्य आत्मा को देख सकता है, क्योंकि वह जीवन से परे विद्यमान, हर्ष से भी अधिक प्रफुल्लित है।

शरीरों में देखते हुआ अशरीरी,
अनित्यता के मध्य में नित्य,
सृष्टि का आलिंगन करता हुआ, सब के मध्य में—
उसके द्वारा प्रबुद्ध मन अपने शोक को दूर फेंक देता है, एकदम दूर !

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

केन्द्र-च्युत न हो

१ जून १९०३ को वैलिज स्प्रिंग्स में दिया हुआ व्याख्यान

भोजन करते समय यहाँ के लोगों का ढंग यह है कि वे परस्पर खूब बातचीत करते रहते हैं, इसके विरुद्ध भारत में दूसरी ही चाल है। वहाँ भोजन करते समय कोई बातचीत नहीं की जाती। आपको जानना चाहिए कि वहाँ भोजन करते समय प्रत्येक व्यक्ति को खाने की क्रिया मानों धार्मिक भाव से करनी पड़ती है, उन्हें उसे पवित्र कृत्य बनाना पड़ता है। आपके मुख में जानेवाले भोजन के हर एक ग्रास के साथ आपको इस विचार पर ध्यान देना चाहिए कि यह ग्रास बाहरी स्थिति का प्रतिनिधि है और इस प्रकार मानों मैं सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर सम्मिलित कर रहा हूँ। वहाँ लोग खाते समय निरन्तर इस विचार को अपने चित्त में रखते हैं और साथ ही ॐ जपते रहते हैं, मन में अनुभव करते और समझते जाते हैं कि सम्पूर्ण संसार मुझ में सम्मिलित हो रहा है। ॐ, ॐ! विश्व मुझ में समाया हुआ है, दुनिया मेरी देह है। इस प्रकार, प्रत्येक ग्रास के साथ वे आध्यात्मिक बल भी प्राप्त करते हैं। वे आध्यात्मिक और शारीरिक भोजन मानो साथ-साथ करते हैं। सारी दुनिया मैं हूँ, यह मेरा ही रुधिर और मांस है। भोजन मानो सम्पूर्ण संसार का प्रतिनिधि है जो मेरा अपना ही रक्त और मांस है, मैं ही पूर्ण एकता हूँ। हिन्दुओं का इस तत्त्व से घनिष्ठ परिचय है। इसीलिए ये सब विचार उनके चित्त और भावनाओं में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार मन की भावुकता (emotional nature) और संकल्प शक्ति (will power) की यहाँ तक पुष्टि हो जाती है कि तुरन्त

हैं। सबेरे जब आप उठें, चले-फिरें अथवा कोई और काम करें, तब अपने विचार सदा निजधाम में रक्खें। सदा अपने आपको केन्द्र में स्थित रक्खें। कदापि केन्द्रच्युत न हों। जिस तरह मछलियाँ जल-राशि में रहती हैं, जिस तरह चिड़ियाँ वायु-राशि मे रहती हैं, उसी तरह तुम भी प्रकाश-निधि में रहो। प्रकाश में ही तुम रहो, चलो, फिरो, और अपना अस्तित्व स्थिर रक्खो। जब अँधेरा होता है, तब भी विज्ञान के अनुसार कुछ न कुछ प्रकाश रहता है और आन्तरिक प्रकाश तो सदा विद्यमान रहता है। गाढ़ निद्रा-अवस्था में भी प्रकाश उपस्थित है। एकाग्रता प्राप्ति करने के लिए, आत्मानुभव के उच्चतम शिखर पर चढ़ने के लिए, नौसिखियों को यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे सदा अपनी सत्ता को प्रकाश का संसर्गी मानते रहें।

भौतिक वस्तु के रूप में भारतवासी उस तरह से प्रकाश की पूजा नहीं करते है, जैसा कि रोमन कैथोलिक ईसाई अपनी मूर्तियों की पूजा मे करते हैं। पर आत्मानुभव के अनन्त निश्चित उपाय के रूप में हिन्दू धर्मग्रन्थो में यह बार-बार उपदेश दिया गया है कि उन्हें अपने आपको निरन्तर संसार का प्रकाश रूप समझते हुए पूजा आरम्भ करना चाहिए। जब आप ॐ का जप कर रहे हों तब अनुभव कीजिये कि आप प्रकाश हैं, तेज-पुञ्ज हैं। प्रकाश आप स्वयं हैं। यह भाव जो हिन्दू शास्त्रों में यथार्थ विज्ञान के साथ प्रकट किया गया है, सभी महात्माओं ने इस प्रेरणा का अनुभव किया है। ईसा ने कहा, "मैं संसार का प्रकाश हूँ। मोहम्मद और अन्य महान् पुरुषों ने इसी प्रकार की घोषणा की है। प्रकाश के रूप में आप ही सब वस्तुओं में व्याप्त हैं। इन विचारों को निरन्तर दुहराते रहने, मनन करते रहना चाहिए, तब इस प्रकार आप सदा परमेश्वर के संस्पर्श में होंगे। इसी प्रकार हिन्दू का प्रत्येक कार्य धार्मिक स्थिति-बिन्दु पर आत्मा से एकाकार, अभेद हो जाता है।

आत्मानुभव होता है। देखो, वही आहार-क्रिया जो पाशविक क्रिया मानी जाती है, अन्त में आत्मानुभव की क्रिया बन जाती है।

इसी प्रकार स्नान करते समय आपको सोहम् अथवा ॐ का गान करना चाहिए। उसका अर्थ है जल। जल ठोस पृथिवी पर लहरा है। स्नान करते समय विवस्त्र शरीर पानी से एक हो जाता है और शरीर का प्रत्येक रोम-कूप उस जल को ग्रहण करता है। उस समय हम प्रकृति से एक होते हैं, जलवासिनी मीन से अभिन्न होते हैं, समस्त विश्व के जल से अपने पुरातन बन्धुत्व का हमें पुनर्लाभ होता है। जिस प्रकार से जल मिट्टी और मैल को देह से हटा देता है, उसी प्रकार आत्मा की धूल भी उसके द्वारा छूट जाती है। सम्पूर्ण विश्व मेरा भोजन बन रहा है, मैं पवन भक्षण कर रहा हूँ। इसी तरह वे जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक कृत्य को, वेदान्त के अनुसार धार्मिक कर्म बना डालते हैं; यहाँ तक कि रोगों को भी वे देवता रूप बना लेते हैं।

भारत में जब किसी घर से चेचक निकलती है तब वे बिल्कुल नहीं घबराते और न कभी कोई चिकित्सा करते हैं, वरन् वे उत्सव मनाते हैं। क्या यह अद्भुत बात नहीं है? वे अनेक प्रकार के बाजे बजाते हैं, और इस अवसर को अत्यन्त धार्मिक समझते हैं। घर का हर एक व्यक्ति उस परमात्मदेव की पूजा करता है। उनके हृदय में शोक-भरी चिन्ताकुल इच्छाएँ प्रकट नहीं होतीं। जब बच्चा चंगा हो जाता है, वे घन्टानाद द्वारा और ढोल पीट कर देवता का पुनर्जीवन मनाते हैं, और बड़ा हर्ष और आनन्द प्रकट करते हैं, भगवान विश्वदेव के प्रति प्रेम और कृतज्ञता प्रकट करते हैं। निस्सन्देह आजकल जनता में इन रीतियों की उपेक्षा होती जा रही है। लोग चाहे इन बातों को समझें या न समझें, पर राम इनका सही अर्थ जानता है और इन सब बातों का सर्वोत्तम उपयोग करता है।

अब राम आप में से प्रत्येक व्यक्ति से एक बात का अनुरोध करता

(हेतु) से परे रहता है. वह हर एक वस्तु का उपभोग करता है और कारण की परवाह नहीं करता। अतः सदैव प्रफुल्लित और सुखी रहता है। वह कारणत्व, कार्य-कारण चक्र से ऊपर है। कारणत्व के प्रदेश में गिरने के बदले आपको सत्य में ऊपर चढ़ना चाहिए। मैं केवल दृश्य मात्र का साक्षी हूँ. कदापि उन नाम-रूपों में फँसा नहीं हूँ, सदा उनसे ऊपर हूँ। नाम-रूप के व्यापार तो सामंजस्यपूर्ण स्पन्दन मात्र हैं, चक्र की ऊपरी और नीची गतियाँ हैं. लहरों का ऊपर उठना और नीचे गिरना है। उद्देश्य है आपको कार्य-कारणत्व से ऊपर उठाने का, न कि नीचे गिराने का। हेतुता के मण्डल से ऊपर उठने के लिए आपको निरन्तर प्रयत्न और संघर्ष करना पड़ेगा। अपने ईश्वरत्व, आत्मा में निवास करो और तुम स्वाधीन हो. आप ही अपने स्वामी हो। विश्व के विधाता हो !

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

तुम्हारी इच्छा व अनिच्छा के बिना ही प्रकृति की सारी शक्तियाँ मनुष्य को आत्मानुभव कराने पर तुली हुई हैं। अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में कोई भेद नहीं पड़ता। जैसे चलने में हम पहले एक पैर उठाते हैं और तब दूसरा नीचे उतारते हैं, इसी तरह सुख और पीड़ा निरन्तर एक दूसरे के बाद आते-जाते रहते हैं। सम्पूर्ण विश्व भर में यही प्रक्रिया काम कर रही है। वे लोग सचमुच सुखी हैं जो सांसारिक सुखों और दुःखों से अपने आपको परे रखते हैं। इन दोनों संवेदनाओं से बचना चाहिए, क्योंकि इसी में सच्चा सुख है। यहाँ एक का उतना ही स्वागत है जितना दूसरे का। सांसारिक सुख और दुःख उसे विचलित नहीं प्रतीत होते, जो मनुष्य उनसे ऊपर उठा होता है, उसे सुख भी उतना ही मान्य है जितना दुःख। प्रत्येक सुख के गर्भ में दुःख उपस्थित रहता है और प्रत्येक पीड़ा के गर्भ में सुख विद्यमान है। जो सुखों को ग्रहण करता है उसे दुःख उठाना जरूरी होता है। ये अलग-अलग नहीं किये जा सकते। सच्चे आनन्द का मार्ग इस सुख-दुःख के चक्र से ऊपर उठना है। सदा सर्वदा अपने आत्मा का अनुभव करो। वही मनुष्य स्वतन्त्र है जो सुखों और दुःखों का समभाव से उपयोग कर सकता है। सदा सत्य आत्मा में स्थिर रहो, फिर तुम्हारे आनन्द में कोई बाधा नहीं डाल सकता। जो स्वतन्त्र है, सारी प्रकृति उसकी अभ्यर्थना करती है सम्पूर्ण विश्व उसके सामने सिर झुकाता है। अनुभव करो कि मैं वही हूँ, और आप स्वतन्त्र हैं। आज चाहे आप को यह तथ्य स्वीकार हो या न हो, फिर भी यह कठोर वास्तविकता बनी रहती है, और देर या सबेर सबको इसकी उपलब्धि करनी होगी। मोहन और शोक का जाल आपको शुद्ध सत्य में स्थिर रखने के लिए है। पतन का सबसे बड़ा हेतु है नाम रूप के चक्र में उलझ जाना। संसार के जड़ पदार्थों के कारण (हेतुओं) पर ज्यों ही कोई मोहन-विचरण आरम्भ करता है, त्यों ही वह नीचे गिरता है। सच्चा कारण

पाप की समस्या

२८ दिसम्बर १९०२ को दिया हुआ व्याख्यान

वेदान्त की शिक्षाओं के विषय में कुछ आपत्तियाँ राम के सामने लायी गई हैं। उस दिन किसी मनुष्य ने कहा था कि यदि वेदान्त ही हिन्दुओं का तत्वज्ञान है तो भारत के राजनैतिक पतन के कारण समझना सहज है। एक दूसरे मनुष्य ने राम से पूछा—यदि हिन्दुओं की शिक्षायें, उनका वेदान्त, उनका तत्वज्ञान, और धर्म दुनिया का सर्वोत्कृष्ट धर्म और तत्वज्ञान होता तो भारतवर्ष इतना अन्धकार नष्ट और ईसाई देश इतने समृद्ध क्यों होते ?

राम इस समय इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देगा, क्योंकि यदि ये प्रश्न उठाये जायेंगे तो निश्चित विषय को छोड़ देना पड़ेगा। हाँ, ये प्रश्न बाद के कुछ व्याख्यानों में उठाये जायेंगे और उनके उत्तर इस तरह दिये जायेंगे कि सब लोगों को आश्चर्य होगा। जिन लोगों को राम के कुछ व्याख्यान सुनने का अवसर मिला है, राम उनसे केवल यह प्रार्थना करता है कि वे अधीर न हों, तुरन्त नतीजों पर कूदने का कष्ट न करें। राम चाहता है कि वे तनिक धीरज रक्खें और कथा को आद्योपान्त सुन लें।

मुसलमानों की इंजील में, अलकोरान में एक वाक्य इस प्रकार दिया हुआ है, "अनाचार और दुर्गुणों के हवाले (यदि) तुम अपने आपको कर दोगे, मद्यपान और विषयभोगों में (यदि) तुम अपने जीवन को फँसा दोगे, तो तुम स्वयं अपनी सत्यानाशी करोगे, तुम स्वयं अपना सत्यानाश-सम्पादन के भागी होगे।' एक मुसलमान सज्जन

पत्थर सीढ़ी का पत्थर बन जायगा। जब विवाह काम-विकार की गुलामी का रूप धारण करता है; तब हर बार की तुष्टि से गुलामी और भी बढ़ जाती है और तुम अधिकाधिक नीचे डूबते जाते हो।

पैगम्बरों ने स्त्रियों के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है। वे कहते हैं कि नारी "नरक का द्वार है।" राम इससे सहमत नहीं है। सड़क पर चलते हुए एक मनुष्य (शराब की एक बोतल अपनी जेब में डाले हुए) ने एक पुजारी से जेल की राह पूछी, क्योंकि वह जेल देखना चाहता था, जैसा कि राम ने पिछले सप्ताह किया था। पुजारी के हाथ में छड़ी थी। उसने छड़ी से बोतल छू दी और कहा—'भाई, यही सबसे नजदीक का रास्ता है, यह तुम्हें अवश्य सीधा वहाँ पहुँचा देगा।' इसी प्रकार नारी के सम्बन्ध में कहा जाता है। दुनिया एक जेल है—आधुनिक विवाह अवश्य तुम्हें वहीं पहुँचाता है। पर यदि नर और नारी एक दूसरे के पतन का कारण होते तो उस परमेश्वर ने जिसने इंजील लिखी है मनुष्यों के हृदयों में नारी को ढूँढनेवाली इंजील ही क्यों लिखी? इस ग्रन्थि में एक गूढ़ अर्थ है। यह तो हमारा अज्ञान है, जो उसे नरक का द्वार बना देता है। दोष केवल उसी को देना चाहिए, न कि विवाह के सम्बन्ध को। प्रश्न यह है कि उसे (अज्ञान को) दूर कैसे किया जाय। यह एक शून्य बिन्दु है। यदि शून्य दशमलव बिन्दु (decimal point) की दाहिनी ओर रखा जाता है, तो उसका मूल्य घट जाता है, और बाईं ओर तो मूल्य बढ़ जाता है। शून्य स्वयं कोई मूल्य नहीं रखता, अपने सम्बन्ध अथवा स्थिति से ही उसका मूल्य स्थिर होता है। इसी तरह इस मामले में भी आपकी स्थिति वैवाहिक सम्बन्ध का मूल्य स्थिर करती है, उसमें स्वयं कोई मूल्य नहीं, सब कुछ आपके हार्दिक भाव पर निर्भर है।

मनुष्य क्या अपना स्त्री में सुख मानता है? इसका अनु-संधान करना चाहिए, अन्यथा हमारा कठिनाई हल नहीं हो सकता।

शराब के व्यसन में मस्त थे, और इन्द्रियों के सुखों और काम-वासनाओं के भोग से पागल हो रहे थे। एक मुसलमान धर्माचार्य उसके पास पहुँचा और फटकारने लगा। उसने कहा—देख, ऐसा मत कर, क्योंकि तू अपने (मुसलमानों के) पैगम्बर के ही नियत किये हुए नियमों को भंग करनेवाला बनेगा। तब तुरन्त इस शराबी ने अलकोरान के उक्त वचन का पहला भाग पढ़कर सुनाया। उसने कहा—यह देखो, अलकोरान स्वयं कहता है, 'तुम शराब पियो और मौज करो, अपने आपको कामाचार के हवाले कर दो। यह तो अलकोरान का, हमारे धर्मग्रंथ का, हमारी इंजील का यथार्थ वचन है। अलकोरान, हमारा धर्मग्रंथ स्वयं मदिरापान और कामपरायणता की आज्ञा देता है और क्यों न दे ?'

इस पर धर्माचार्य ने कहा, "अरे भाई ! तुम यह क्या बात करते हो ? ज़रा उस वचन के बाद के भाग को भी तो पढ़ो, 'तुम आप अपना सत्यानाश करोगे' (यही है उस वचन का दूसरा भाग)। दूसरा भाग भी तो पढ़ो। शराबी ने उत्तर दिया—"पृथ्वीतल पर एक भी ऐसा मनुष्य नहीं हो सकता जो सारे अलकोरान पर अमल कर सके। मुझे एक इस हिस्से पर अमल करने दीजिये। यह आशा और कल्पना नहीं की जा सकती कि कोई मनुष्य इंजील की सारी शिक्षाओं पर अमल कर सकता है। कुछ लोग थोड़े से अंश पर ही अमल कर सकते हैं और कुछ एक बहुत बड़े अंश पर; और बस। पर समग्र अलकोरान पर कोई नहीं अमल करता। फिर आप मुझ से समग्र पर अमल करने की आशा क्यों रखते हैं ? मुझे उस वचन के केवल प्रथम भाग का ही उपभोग करने दीजिये।'

अतः आप लोगों से राम की केवल इतनी प्रार्थना है कि उस शराबी मुसलमान की तर्कशैली का उपयोग करना उचित नहीं है। पहले पूरी बात पढ़ना उचित है, तब परिणाम निकालना चाहिए, उससे पहले नहीं।

यही इन्द्रिय-सुख मनुष्यों को गुलाम बनाता है। दोजन का युद्ध हमें इस बात का एक सुन्दर दृष्टान्त देता है। इस के द्वारा एक लड़की वीर बन जाती है और दूसरी नहीं बन पाती। यह कहना मिथ्या है कि यह सुख एकमात्र नारी से प्रकट होता है। हमें इसमें की भूल को समझ लेना चाहिए। उसमें अथवा उसके शरीर में कोई सुख नहीं है।

यदि यह सुख हमारे प्रेमपात्र में केन्द्रित होता, तो स्त्री और पुरुष सदा एक दूसरे के लिए सुख का स्रोत बने रहते? किन्तु हम जानते हैं कि यह बात सत्य नहीं है। जब आप इन्द्रिय-सुख का उपभोग कर चुकते हैं तो उसके बाद आप किस दशा में पहुँचते हैं? सुख की चेतना फिर क्यों नहीं रहती। नपुंसक होने पर क्या वह (नारी) सुख का स्रोत मालूम होती है? जब तुम्हारी अर्द्धांगी रोगी हो जाती है अथवा यदि वह व्यभिचारिणी हो जाती है अथवा जब तुम बीमार होते हो, तब उससे कोई सुख नहीं रहता। क्योंकि तुम्हारे सामने दो पृथक् सत्ताएँ रहती हैं। जब द्वैत का लोप हो जाता है और पूर्ण एकता प्रकट होती है तो न केवल शरीर ही की पूर्ण एकता होती है, किन्तु मन और आत्मा भी एक होती है। फिर एक ऐसी अवस्था आती है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। देह देह नहीं रह जाता संसार संसार नहीं रहता, एकता, स्वर्ग स्वाधीनता निर्भयता द्वैत का नामोनिशान नहीं—अभिन्नता, अद्वैत का प्रादुर्भाव होता है। दुनिया और देह का लोप, पूर्ण विनाश! द्वैत-भ्रम का पता नहीं। न मैं देह हूँ और न वही नारी है; दोनों शरीर, मन दुनिया से ऊपर! लो वैकुण्ठ प्राप्त हुआ लक्ष्य पूर्ण हुआ, न कोई दशा, न कोई अवस्था! वेदान्त कहता है, तब तुम स्वयं शक्ति और परमानन्द होते हो, अपनी सच्ची आत्मा! सचमुच तुम वही हो। आश्चर्यों का आश्चर्य! जब धनात्मक और ऋणात्मक धाराएँ एक पूर्ण वृत्त बना लेती हैं तब प्रकाश प्रकट होता है जैसे बिजली के लैम्प में। तुम्हारे शरीरों में भिन्न-भिन्न वाइनैमो लगे हुए हैं। बिजली का पेश पूरा

यही इन्द्रिय-सुख मनुष्यों को गुलाम बनाता है। ट्रोजन का युद्ध हमें इस बात का एक सुन्दर दृष्टान्त देता है। इस के द्वारा एक लड़की वीर बन जाती है और दूसरी नहीं बन पाती। यह कहना मिथ्या है कि यह सुख एकमात्र नारी से प्रकट होता है। हमें इसमें की भूल को समझ लेना चाहिए। उसमें अथवा उसके शरीर में कोई सुख नहीं है।

यदि यह सुख हमारे प्रेमपात्र में केन्द्रित होता, तो स्त्री और पुरुष सदा एक दूसरे के लिए सुख का स्रोत बने रहते? किन्तु हम जानते हैं कि यह बात सच नहीं है। जब आप इन्द्रिय-सुख का उपभोग कर चुकते हैं तो उसके बाद आप किस दशा में पहुँचते हैं? सुख की चेतना फिर क्यों नहीं रहती। नपुंसक होने पर क्या वह (नारी) सुख का स्रोत मालूम होती है? जब तुम्हारी अर्द्धांगी रोगी हो जाती है अथवा यदि वह व्यभिचारिणी हो जाती है अथवा जब तुम बीमार होते हो, तब उसमें कोई सुख नहीं रहता। क्योंकि तुम्हारे सामने दो पृथक् सत्ताएँ रहती हैं। जब द्वैत का लोप हो जाता है और पूर्ण एकता प्रकट होती है तो न केवल शरीर ही की पूर्ण एकता होती है, किन्तु मन और आत्मा भी एक होती हैं। फिर एक ऐसी अवस्था आती है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। देह देह नहीं रह जाता, संसार संसार नहीं रहता, एकता, स्वर्ग [illegible] निर्भयता [illegible] का [illegible] नहीं—अभिन्नता, अद्वैत का प्रादुर्भाव होता है। दुनिया और देह का और पूर्ण विनाश! तन-मन का पता नहीं। न वे देह हैं और न वह नारी है, दोनों शरीर, मन, दुनिया से ऊपर! जो बैकुण्ठ प्राप्त हुआ उसपर पूर्ण हुआ, न कोई दशा, न कोई अवस्था। वेदान्त कहता है तब तुम स्वयं शान्ति और परमानन्द होते हो, [illegible] आत्मा! [illegible] हो। आश्चर्यों का आश्चर्य! जब द्वन्द्वात्मक और [illegible], तब [illegible] पूर्ण [illegible] होती है तब प्रकाश प्रकट होता है जैसे बिजली के [illegible] में। तुम्हारे [illegible] में भिन्न भिन्न [illegible] हुए हैं। [illegible]

अपने कन्धों पर रक्खा और लोगों से पूछा, "यह क्या है?" उत्तर मिला। "शाल", तीसरी बार उसने कपड़े को धोती की तरह पहना और उन्होंने कहा—धोती। बीरबल ने तपाक से कहा—अन्धे, सब के सब अन्धे हो। यह तो इनमें से कुछ भी नहीं है, केवल कपड़ा है, नामों और रूपों के नीचे कपड़ा छिप जाता है।

आत्मा के स्वरूप को अनुभव करो। सोने को देखने के लिए उसे तोड़ने की जरूरत नहीं। जब आप नर, नारी, भँवरों, लहरों, कपड़े और सोने की बात करते हैं, तब आप उनके नीचे (आधारभूत) वास्तविकता का विचार नहीं करते।

यह मत कहिये कि विवाह धर्म के विरुद्ध है। देखो और समझो कि सुख का वास्तविक स्वरूप क्या है, वास्तविक आत्मा क्या है। आत्मानुभव के अभिलाषी मनुष्य की हैसियत से, सच्चे आनन्द, वास्तविक तथ्य, मूल तत्त्व पर विचार करो। जब कभी पृथकता की चेतना तुम्हारे हृदय में उठ जाय—तब ध्यान-परायण होकर बन्धन के कारण को निर्मूल कर दो, और वास्तविकता में डूब जाओ।

ॐ—वही मैं हूँ—इसे सिद्ध करो, 'क्या वही मेरा असली स्वरूप है? क्या मैं वही हूँ?" यदि मैं वही हूँ, तो दुनिया केवल तरंगमात्र है, मैं क्यों उसके पीछे मारा-मारा फिरूँ। शरीर चेतना की अवस्था में इच्छायें और वासनायें तुमसे, परम आधार से टकराने लगती हैं। अतः सकल्प-शक्ति के द्वारा शरीर-चेतना को मिटा दो। सकल्प-शक्ति के दृढ़ होने पर नाभिकुण्ड से विचार-धारा ऊपर की ओर उठती है, जो उत्तरोत्तर सबल होकर मस्तिष्क तक पहुँच जाती है। तब विषय-वासना प्राकृतिक ढंग से कम होने लगती है और हरेक बुराई घटती जाती है। क्यों? क्योंकि देदीप्यमान सूर्य के सामने बिजली की रोशनी कैसे चमक सकती है। वह तो केवल अँधेरे में ही चमकती और प्रकाश देती है। धीरे-धीरे उज्ज्वल सूर्य-प्रकाश में आने से इन्द्रियों का सुख

जो देश-काल-वस्तु से परे है, एक महासागर के समान है, जिसमें सभी पदार्थ लहरों, भँवरों के समान हैं, सभी उस एक आधार-भूत सच्चे मौलिक तत्व के रूपान्तर हैं, जिसमें आपके शरीर भी लहरों जैसे हैं। और उनकी अनेकता का एक मात्र कारण है उनका नाम-रूप। एक बच्चा नदी की ओर देखकर कहने लगा, "आओ, भाई! आओ, भाई! देखो, यह एक लहर आ रही है"। यहाँ जल तो पहले ही से है, किन्तु प्रधानता ऊपरी व्यापार को दी गई है। आओ, मैं तुम्हें एक लहर दिखाऊँगा। ठीक, वही बात यहाँ भी है, एक निरवयव परमेश्वर है! सूर्य, चन्द्र, शरीर, और "मैं तू" रूपी तरगें मानस-सागर में उमड़ती रहती हैं। इस भाँति मनुष्य स्वयं अनेकता पैदा करता है, नाम-रूप के दृश्य में फँसता है. शरीरों का संघर्ष होता है, तरगें एक दूसरे से टकराती हैं। सुख केवल पदार्थों के संघर्ष से प्रकट होता है, ऐसा सोचना भी भूल है। वह तो जल-रूप आनन्द-रूप आत्मा की उपस्थिति है, जो लहरों के टूटने पर स्पष्ट हो जाती है। वेदान्ती बच्चे को सिखाना चाहता है कि सोना क्या चीज है और उसे एक अँगूठी दिखाकर कहता है, "यह सुवर्ण है"। बच्चा कहता है "क्या गोलाई सोना है?" नहीं। "क्या रंग सोना है?" नहीं। "चिकनाई?" नहीं, "भार" नहीं। बताओ, उसे सोने की पहचान कैसे करायी जा सकती है? सोने की एक दूसरी वस्तु उसे दिखाओ। अब वह स्वयं सोने की कल्पना उनमें से निकाल लेगा और समझ जायगा कि सोना क्या है। उसके गुणों को यथार्थ रूप से पहचानो और उन्हें जीवन में बरतो।

बीरबल ने बादशाह से पूछा कि अन्धों की संख्या अधिक है या सुजाखों की। बहस हुई और निश्चय हुआ कि कल सिद्ध किया जाय। बादशाह समझता था कि अन्धे कम हैं। [illegible] प्रकार के [illegible] बीरबल कपड़े का एक टुकड़ा लाया, और उसे सिर से लपेटकर पूछा—"यह क्या है?" उत्तर मिला, "[illegible]।" तब उसने [illegible]

और निज-आत्मा में लीन हो जाती। वह अब दण्डवत् प्रणाम करके राम की उपासना करती। यहाँ तक राम की ओर ताकती कि राम का शरीर उसके लिए परमात्मा का रूप बन जाता। वह ॐ का उच्चारण करती और राम में आत्मा का दर्शन करती। अन्त में वह अपने आप में परमेश्वर को देखती और इन विचारों को बाहर फेंकने लगती। इस प्रकार पति-पत्नी में से प्रत्येक आपस में परमेश्वर को देखते परस्पर एक दूसरे की सहायता करते हैं, और आत्मानुभव प्राप्त करते हैं। राम ने उसे ऊपर उठाने में सहायता दी। ऐसा कुछ समय तक होता रहा। ऐसी स्थिति में उन्होंने महीनों साथ-साथ बिताये, अधम विचारों का कोई खयाल उनके चित्त में नहीं आया, उन्होंने काम-विकार जीत लिया। परस्पर एक दूसरे का मर्म समझते थे, दोनों मुक्त थे। पति और पत्नी का भाव जाता रहा, फिर कोई बन्धन न था। न वह उसे अपना पति समझती और न वह उसे अपनी स्त्री समझता था।

विचारों की संकीर्णता, और अधिकार-लिप्सा के कारण दाम्पत्तिक क्लेश उत्पन्न होते हैं। इसी हालत में उनके स्वार्थों की मुठभेड़ होती है; और वैवाहिक बाधायें उत्पन्न होती हैं। वेदान्त को समझो और मुक्त हो जाओ। इन नाम-मात्र के बन्धनों के अतिरिक्त और कोई बन्धन नहीं है। हर एक को स्वाधीन होना है, अपने बच्चों को पूर्णतया स्वाधीन बना दो। स्वाधीनता से मनुष्य कभी बिगड़ता नहीं। संपूर्ण संसार स्वर्ग जैसा है, और परमेश्वर को कभी धोखा नहीं दिया जा सकता।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

दीपक की भाँति अपनी प्रभा नष्ट फैला दोगे। गाली देना और निन्दा करना अस्वाभाविक है। तुम दूसरे तभी उन्नत कर सकते हो जब स्वयं ऊपर उठो। भाई! साधनों का उपयोग करो और ऊपर उठो।

दुनिया तुम्हारा एक सपना है। उसमें दूसरे सपनों का क्या अस्तित्व! पापों के मूल कारण से डरो, जो केवल आत्मा को जानने से दूर होता है। विशुद्धता का अनुभव करो और विशुद्ध हो जाओ। इसके सिवा किसी धर्म की शिक्षा देना अस्वाभाविक है।

"Do come or do not come,
You are in me
Stay near, or stay far, wherever you be,
In me you are, in me you move,
Nay, me is thee,
Dissolve in me, and be the blissful sea.
Giver and not seeker—
Partake of my nature and be happy."

"आओ, चाहे न आओ,
तुम मुझ में हो।
दूर रहो, अथवा निकट रहो, जहाँ कहीं तुम हो,
मुझमे तुम हो, मुझ ही में तुम्हारी गति है।
नहीं, मै ही तू हूँ,
मुझमे घुल जाओ, और आनन्द-सागर बन जाओ।
दाता हूँ, माँगनेवाला नहीं।
मेरी प्रकृति को भोगो और सुखी बनो।"

भारत में जो रीति प्रचलित है, यही तर्कसंगत वैज्ञानिक और स्वाभाविक विधि है कि स्त्री सहायक है, न कि पति की बाधक।

आत्मानुभव कर चुकने के बाद दो वर्ष तक और राम गृहस्थ रहा। उसने अपनी स्त्री को वेदान्त समझाया। वह फूल-बत्तियाँ लाती,

बच्चे क्यों मरते हैं? मान लो, यह एक मनुष्य है जिसे विशेष प्रकार की इच्छायें हैं। एक समय ऐसा आता है जब विशेष प्रकार की ये इच्छायें बदल जाती हैं और दूसरी अथवा विभिन्न प्रकार की इच्छायें उपस्थित होती हैं। उदाहरण के लिए एक मनुष्य अमेरिका के किसी नगर में बहुत काल तक रहता है। किन्तु वहाँ वह ऐसा साहित्य पढ़ता रहता है, ऐसी पुस्तकों का अध्ययन और चिन्तन करता रहता है जिनमें उसकी आन्तरिक इच्छायें और वृत्तियाँ बदल जाती हैं। मान लो कि उसका मन पूर्वीय दृश्यों में रँग जाता है, वह दिल से हिन्दू हो जाता है। ऐसी स्थिति में यद्यपि वह अपना अमेरिकन धंधा कुछ दिनों तक, उस समय तक, चलाये जाता है, जब तक उसके आन्तरिक भावों और इच्छाओं और उसकी बाहरी इच्छाओं में पूर्ण पार्थक्य नहीं हो जाता। वस्तुतः अब वह अमेरिकन नहीं रह गया; वह भारत का हो गया है और भारतवर्ष में ही उसे पैदा होना चाहिए। पर इसके साथ ही वह वहां के एक धनी पुरुष के प्रति भी बड़ा अनुरक्त है, उसके साथ रहने का बड़ा इच्छुक है। अब मान लो, सैनफ्रान्सिस्को के नगर-पति अथवा किसी अन्य बड़े आदमी से सम्बन्ध स्थापित करनेवाली उसकी यह आकांक्षा उतनी प्रबल नहीं है जितनी भारत में जन्म लेने की। अब इस पहली का पूर्ण होना भी आवश्यक है, और इस दूसरी इच्छा का भी। का निपटारा कैसे हो? परिस्थिति ऐसी है जो उसका अपने उस रे से सम्पर्क नहीं होने देती जिससे उसे अत्यन्त स्नेह है। इसलिए वह मरता है, तब उसी अमुक नगर-पति (मेयर) के पुत्र के रूप में, अथवा उस बड़े आदमी के पुत्र के रूप में, जिसने उसे आकृष्ट किया था, पैदा होता है। इस व्यक्ति से, जिसने उसे आकृष्ट किया था, तब तक उसका सम्बन्ध बना रहता है, जब तक उसकी इस इच्छा की पूर्ति, अथवा अपने इस प्यारे से लगाव की समाप्ति नहीं हो जाती। इसके बाद अब भारत में उसका पैदा होना निश्चित है, ताकि उसकी दूसरी

कक्षा-प्रश्नों के उत्तर

गोल्डेन गेट हॉल, रविवार, २५ जनवरी, १९०३।

महिलाओ और सज्जनो के परिवर्तनशील रूपों में अमर आत्मन्!

प्रश्न—छोटे बच्चे क्यों मरते हैं?

इन प्रश्नों पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए हमें यथेष्ट समय नहीं है, यहाँ उनके उत्तरों की ओर केवल संकेत मात्र किया जायगा।

उत्तर—किसी सज्जन ने यह एक पुस्तक रची है। इस पुस्तक में अनेक अंग्रेजी संदर्भ हैं, और उनके अतिरिक्त कहीं-कहीं संस्कृत पद्य और संदर्भ भी उद्धृत किये गये हैं। आप जानते हैं कि जिस कलम से अंग्रेजी लिखी जाती है, संस्कृत लिखने के लिए उससे विभिन्न प्रकार की कलम की जरूरत पड़ती है। अतएव जब कोई ग्रन्थकार अंग्रेजी लिखता है, तब वह एक विशेष प्रकार की कलम का प्रयोग करता है, और जब संस्कृत लिखता है तब उसे वह कलम बदलनी पड़ती है, और इस भाँति अन्य भाषाओं के लिखते समय भी कलमों का परिवर्तन होता है। इसी प्रकार जब तुम इस एक भौतिक शरीर में रहते हो, तब तुम अपने इस विशेष शरीर का उसी भाँति व्यवहार करते हो जिस भाँति तुम एक कलम से काम लेते हो। इस शरीर को तुम तभी तक धारण करते हो, उस पर नियन्त्रण करना चाहते हो, जब तक इसके द्वारा तुम्हारा काम निकलता है। जब देह इतनी बूढ़ी और रोगी हो जाती है कि फिर उससे तुम्हारा काम नहीं चलता, तब तुम उसे परे फेंक देते हो, तुम उसी तरह दूसरा शरीर धारण कर लेते हो जिस तरह कपड़ों के पुराने होने पर तुम उन्हें बदल कर दूसरे कपड़े पहन लेते हो। इसमें भयंकरता की कोई बात नहीं, यह तो बिलकुल स्वाभाविक है।

उचित इच्छाएँ पूरी हों। यही कारण है बच्चों के बचपन में मरने का।

बस, इस अपने प्यारे व्यक्ति के यहाँ, उस पिता या माता के यहाँ पुत्र रूप से जन्म लेने की इच्छा अंग्रेजी अक्षरों में लिखी हुई किसी बड़ी पुस्तक में एक संस्कृत पंक्ति के समान है। इस प्रकार जो बच्चे बचपन में ही मर जाते हैं, वे उन पुस्तकों के उद्धरणों के समान हैं, जिनमें प्रमाणस्वरूप किसी विदेशी भाषा के कुछ उद्धरण दिये जाते हैं।

प्रश्न—कृपया पाप और पुण्य को विभाजन करनेवाली रेखा बताइये।

उत्तर—यह एक सीढ़ी है। यदि तुम सीढ़ी पर ऊपर की ओर चढ़ो, तो वह पुण्य है। यदि तुम सीढ़ी पर नीचे की ओर उतरो, तो वह पाप है।

गणित विद्या में हमें अनेक समन्वस्थ स्वय सिद्धियाँ (co ordinate axioms) मिलती हैं। उन स्वय सिद्धियों की स्वत अपनी कोई धनात्मक अथवा ऋणात्मक स्थिति नहीं होती। वहा धनात्मक और ऋणात्मक की सापेक्ष (relative) स्थिति रहती है।

इसी भाँति वेदान्त के अनुसार पाप और पुण्य सापेक्ष शब्द हैं। ऐसा कोई स्थिर बिन्दु नहीं है जहाँ पर तुम यह कह सको कि यहाँ पर पाप समाप्त होता है और यहाँ पर पुण्य प्रारम्भ होता है।

मान लो, यह एक गणित रेखा है जिसका माप [illegible] है। अब इसकी गति यदि एक ओर को होती है तो धन कहलाती है और दूसरी अथवा विपरीत ओर हो तो ऋण कहलाती है। बिन्दु का जो स्थिति ऋण के स्थिति बिन्दु से धन कही जा सकती है वही दूसरी ओर से धन के स्थिति-बिन्दु से ऋण कही जा सकती है। इसी तरह से यदि आप किसी कार्य विशेष से आगे की ओर ऊपर को चलते हैं यदि आप सत्य के निकट पहुँचते हैं तो वह पुण्य है। यदि किसी कार्य विशेष से आप सत्य से भटक जाते हैं तो वह कार्य आपके लिए पाप

उचित इच्छाएँ पूरी हों। यही कारण है बच्चों के बचपन में मरने का।

बस, इस अपने प्यारे व्यक्ति के यहाँ, उस पिता या माता के यहाँ पुत्र रूप से जन्म लेने की इच्छा अंग्रेजी अक्षरों में लिखी हुई किसी बड़ी पुस्तक में एक संस्कृत पंक्ति के समान है। इस प्रकार जो बच्चे बचपन में ही मर जाते हैं, वे उन पुस्तकों के उद्धरणों के समान हैं, जिसमें प्रमाणस्वरूप किसी विदेशी भाषा के कुछ उद्धरण दिये जाते हैं।

प्रश्न—कृपया पाप और पुण्य को विभाजन करनेवाली रेखा बताइये।

उत्तर— यह एक सीढ़ी है। यदि तुम सीढ़ी पर ऊपर की ओर चढ़ो, तो वह पुण्य है। यदि तुम सीढ़ी पर नीचे की ओर उतरो, तो वह पाप है।

गणित विद्या में हमें अनेक समन्वयस्थ स्वयं सिद्धियाँ (co ordinate [illegible]tions) मिलती हैं। उन स्वयं सिद्धियों की स्वतः अपनी कोई धनात्मक अथवा ऋणात्मक स्थिति नहीं होती। वहाँ धनात्मक और ऋणात्मक की सापेक्ष (relative) स्थिति रहती है।

इसी भाँति वेदान्त के अनुसार पाप और पुण्य सापेक्ष शब्द हैं [illegible] ऐसा कोई स्थिर विन्दु नहीं है जहाँ पर तुम यह कह सको कि यहाँ प[illegible] पाप समाप्त होता है और यहाँ पर पुण्य प्रारम्भ होता है।

मान लो यह एक गणित रेखा है जिसका [illegible] । य[illegible] अब इसकी गति यदि एक ओर को होती है तो धन कहलाती [illegible] और दूसरी अथवा विपरीत ओर हो तो ऋण कहलाती है [illegible] स्थिति ऋण के स्थिति विन्दु से धन कही जा सकती है [illegible] ओर से धन के स्थिति-विन्दु से ऋण कहा जा सकता है। इसी त[illegible]

यदि आप किसी कार्य विशेष से अपने [illegible] और ऊपर को [illegible] आप सत्य के निकट पहुँचते हैं तो वह पुण्य है। यदि किस[illegible] विशेष से आप सत्य से भटक जाते हैं तो वह कार्य आपके [illegible]

गये। और वहाँ से दौड़ते-दौड़ते जब वे अपनी स्त्री के घर पहुँचे, तब वहाँ सब द्वार बन्द थे। वे न तो भीतर घुस सके, और न किसी नौकर या घरवाले को जगा सके, क्योंकि वे लोग सब के सब भीतरी कमरों में सो रहे थे। अब वे क्या करते? आपने सुना होगा, लोग कहते हैं, कि राह में नदी हो तो प्रेम तैर कर उसे पार कर जाता है, राह में पहाड़ हों, तो प्रेम चढ़कर उन्हें पार कर जाता है। सो उसी प्रेम के पंखों पर तुलसीदास अपनी स्त्री के पास पहुँचनेवाले थे। अब जब नैराश्य के मारे वे पागल जैसे हो रहे थे, उन्हें मकान से लटकती हुई कोई वस्तु दिखाई पड़ी। वे समझे, रस्सी है। उन्होंने सोचा, देखो, मेरी स्त्री मुझे इतना अधिक प्रेम करती है कि मेरे ऊपर चढ़ने के लिए उसने पहले ही से रस्सी लटका रक्खी है। वे बहुत खुश हुए। यह रस्सी नहीं थी, एक लम्बा साँप था। उन्होंने साँप को पकड़ लिया, पर साँप ने उनको काटा नहीं। और उसके सहारे वे घर के ऊपर की मंजिल पर चढ़ गये, और जिस कमरे में उनकी स्त्री सोई हुई थी, उसमें जा पहुँचे। वह चकित हो उठी और बोली—"तुम यहाँ कैसे? कैसे आश्चर्य की बात है?" वे आनन्द के आँसू बहाते हुए बोले,—'भद्रे! तुम्हीं ने तो मेरे यहाँ का मार्ग इतना सरल कर दिया है। क्या तुमने नदी को पार करने के लिए एक डोंगी तट पर नहीं रख दी थी, और ऊपर चढ़ने के लिए क्या तुमने दीवाल पर रस्सी नहीं लटका रक्खी थी?' वे सचमुच संज्ञाहीन थे, प्रेम ने उन्हें पागल कर दिया था। स्त्री करुणा और हर्ष के आँसू बहाने लगी। उनकी स्त्री विद्वान थी, दिव्य बुद्धि-सम्पन्ना देवी थी। उसने कहा, 'मेरे देवता! हे प्राणप्यारे! इस दिखावटी मुझ में, मेरे इस शरीर में, आपको जितना प्रेम है, यदि उतना ही प्रेम उस दिव्य आत्मा से होता जो इसका आधार और स्वरूप है, तो आप ईश्वर हो जाते, और आप संसार के सबसे बड़े महात्मा बन जाते। आप भूमंडल के सर्व श्रेष्ठ सिद्ध होते, समस्त विश्व आपकी पूजा करता।

स्त्री जब उनके हृदय में ईश्वरत्व की यह भावना भर रही थी, उन्हें सिखा रही थी कि वह परमेश्वर के साथ एक रूप है, तब उसने पूछा—"हे प्यारे पति! क्या तुम मेरे इस शरीर को प्यार करते हो? यह शरीर तो क्षणिक, चंचल है। इसने अभी तुम्हारा घर छोड़ा, और यहाँ इस घर में चला आया। इसी तरह यह देह आजकल में इस लोक को भी छोड़ सकती है। यह देह आज बीमार भी हो सकती है और क्षण भर में इसकी सारी सुन्दरता नष्ट हो सकती है। और देखिये, वह कौन सी चीज़ है जिसने मेरे कपोलों को खिला रक्खा है, मेरे नेत्रों को ज्योति कौन प्रदान कर रहा है, मेरे शरीर में कान्ति कहाँ से आती है, वह कौन सी वस्तु है जो मेरे नयनों के द्वारा चमकती है, मेरी केशों को यह सुनहला रंग किसने प्रदान किया है, मेरी इन्द्रियों और मेरे देह में जीवन और प्रकाश एवं क्रिया किसकी करतूत है? देखो प्यारे! तुम्हें मोहित करने वाला कौन है? वह यह चर्म नहीं, वह मेरा यह शरीर नहीं। कृपया ध्यान दीजिये, कृपया देखिये, वह है कौन? वह तो मेरा सच्चा ईश्वर, आत्मा है जो तुम्हें मोहित, वशीभूत तथा अनुरक्त बना रहा है। वह तो मेरा हृदयस्थ परमेश्वर है, उसके सिवा और कोई नहीं। वही परब्रह्म है, वही सर्वेश्वर मेरे अन्दर है, उसके सिवा और कुछ नहीं। उसी परमेश्वर का अनुभव करो, सर्वत्र उसी परमेश्वर को देखो। क्या वही परमात्मा, वही परमेश्वर नक्षत्रों में विद्यमान नहीं है, क्या वही परमात्मा चन्द्र में होकर सीधे तुम्हारी ओर नहीं देख रहा है?"

लो, उस महात्मा की विषय-वासना उड़ गई। वह भोगलिप्सा और सांसारिक आसक्तियों से ऊपर उठ गया। उस महात्मा ने, जिसे पहले एक स्त्री से ही असाधारण प्रेम था, अब उस परमात्मा को, उस प्यारे स्वरूप को सारे संसार में सर्वत्र अनुभव करने लगा। यहाँ तक कि वह परमेश्वर से एक सच्चा प्रेमी, परमात्मा का मतवाला महात्मा

होगा। दूसरी ओर, यदि सौ रुपये मासिक पानेवाला पाँच सौ मासिक वेतन का पद पा जाय, तो वह पद उसके लिए स्वर्ग हो जायगा, उसके सुख हर्ष और शान्ति का कारण होगा। इस प्रकार कोई भी स्थिति या पद अपने आप बुरा या भला नहीं कहा जा सकता। अपने आपमें सभी स्थितियाँ अनिश्चित हैं, जैसे कोई कर्म अपने आप से पाप या पुण्य नहीं कहा जा सकता। सारी बात इस पर निर्भर है कि आप अपनी परिस्थिति और बाह्य वातावरण से कैसा सम्बन्ध रखते हैं। यदि यह अवस्था उन्नति की है, तो आप प्रसन्न हैं; यदि यह अवस्था उन्नति की नहीं है, तो आप दुःखी और व्यथित हैं। इस प्रकार ये इच्छायें विभिन्न प्रकार की होने के कारण तुम्हारी उन्नति में सहायक बनती हैं। ये इच्छायें न हमारे पूर्वजन्मों से सम्बन्ध रखती हैं और न उनके कारण उत्पन्न ही होती हैं। ये इच्छाये चाहती हैं कि आप जड़ता और तमोगुण को जीतें। जब जड़ता प्रबल हो जाती है और आत्मिक शक्ति दुर्बल पड़ जाती है, तो आप क्लेश भोगते हैं। यही यातना, यही कष्ट मानो एक प्रकार का आध्यात्मिक संकेत है, जिसके द्वारा तुम ठीक राह पर आ जाते हो, तुम्हें अपनी उच्चतर प्रकृति की याद आ जाती है, और तुम्हारे आध्यात्मिक रोग का निवारण होता है। व्यथा, यातना और कष्ट ही इस संसार में कल्याण रूप हैं। यदि संसार में व्यथा और यातना न होती तो बिलकुल उन्नति न होती। इसलिए वेदान्त कहता है कि यातना के इस नियम के कारण आपके पतन को कभी कोई आशंका नहीं है। हरगिज मत सोचो कि तुम कभी भी नीचे घसीटे जाओगे, अथवा कभी नीचे ढकेल दिये जाओगे!

यदि तुम किसी को अपने से बहुत आगे बढ़ा हुआ देखते हो, तो उससे डाह न करो, क्योंकि तुम स्वयं एक दिन वहां पहुँच जाओगे। और यदि तुम किसी को अपने आपसे नीचे बहुत नीचे देखते हो, तो उसे तुच्छ मत समझो, क्योंकि एक दिन वह भी वहीं पर होगा जहाँ

तुम आज हो। इस जन्म पहले तुम जहाँ पर थे कुछ लोग आज वहाँ खड़े हैं, और कुछ लोग आज वहाँ हैं जहाँ पर तुम आज से इस जन्मों में पहुँचोगे! इसलिए तुम्हें सब पर सार्वभौम प्रेम रखना चाहिए। कभी किसी वस्तु या व्यक्ति को तुच्छ न समझना चाहिए। जो तुमसे अधिक ऊँचाई पर हैं, उनसे डाह मत करो, क्योंकि यथासमय तुम वहाँ पहुँच जाओगे।

प्रश्न—यदि व्यथा और दुःख के नियम के कारण हम उन्नति करने को बाध्य होते हैं, तो क्या वंशपरम्परा के नियम में कोई सच्चाई है? बच्चे अपने पिता-माताओं के विशेष रोगों से क्लेश पाते हैं। इन बातों की संगति कैसे होगी?

उत्तर—आप जानते हैं कि कल यह बताया गया था कि हम आप ही अपने माता-पिताओं का निर्माण करनेवाले हैं। यहाँ एक ऐसा मनुष्य है जिसे एक विशेष प्रकार का रोग है। हम माने लेते हैं कि रोग उतना ही बुरा है जितना लोग कहते हैं, यद्यपि वास्तव में 'बुरा' शब्द का कोई निश्चित पर्याय नहीं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु परमेश्वर रूप है—किन्तु यहाँ एक मनुष्य है जिसके रोग का सूत्रपात्र कामुकता, भोग-लिप्सा, निम्न वासना और पाशविक मनोविकारों से हुआ है। अब जब यह मनुष्य मरेगा तब एक विशेष प्रकार का चक्र और वातावरण जिससे उसकी इन इच्छाओं की पूर्ति होगी, अपने लिए पसन्द करेगा। दूसरे शब्दों में एक प्रकार से उसकी ये इच्छायें अपने फल से पहले प्रकट हो रही हैं।

आध्यात्मिक सम्बन्ध के नियम से वह ऐसे लोगों के पास खिंचता है, ऐसे लोगों में पैदा होता है, वह अब ऐसी देह से, ऐसे मस्तिष्क में, ऐसे स्वास्थ्य में प्रवेश करता है, जो उसकी इन विशेष इच्छाओं की पूर्ति के उपयुक्त होती है। इस भाँति वह ऐसे लोगों के पास पहुँच जाता है। यहाँ वंशपरम्परा का नियम भी (Law of Heredity) ठीक उतरता

होगा। दूसरी ओर, यदि सौ रुपये मासिक पानेवाला पाँच सौ मासिक वेतन का पद पा जाय, तो वह पद उसके लिए स्वर्ग हो जायगा, उसके सुख, हर्ष और शान्ति का कारण होगा। इस प्रकार कोई भी स्थिति या पद अपने आप बुरा या भला नहीं कहा जा सकता। अपने आपमें सभी स्थितियाँ अनिश्चित हैं, जैसे कोई कर्म अपने आप से पाप या पुण्य नहीं कहा जा सकता। सारी बात इस पर निर्भर है कि आप अपनी परिस्थिति और बाह्य वातावरण से कैसा सम्बन्ध रखते हैं। यदि यह अवस्था उन्नति की है, तो आप प्रसन्न हैं; यदि यह अवस्था उन्नति की नहीं है, तो आप दुःखी और व्यथित हैं। इस प्रकार ये इच्छायें विभिन्न प्रकार की होने के कारण तुम्हारी उन्नति में सहायक बनती हैं। ये इच्छायें न हमारे पूर्वजन्मों से सम्बन्ध रखती हैं और न उनके कारण उत्पन्न ही होती हैं। ये इच्छायें चाहती हैं कि आप जड़ता और तमोगुण को जीतें। जब जड़ता प्रबल हो जाती है और आत्मिक शक्ति दुर्बल पड़ जाती है, तो आप क्लेश भोगते हैं। यही यातना, यही कष्ट मानो एक प्रकार का आध्यात्मिक संकेत है, जिसके द्वारा तुम ठीक राह पर आ जाते हो, तुम्हें अपनी उच्चतर प्रकृति की याद आ जाती है, और तुम्हारे आध्यात्मिक रोग का निवारण होता है। व्यथा, यातना और कष्ट ही इस संसार में कल्याण रूप हैं। यदि संसार में व्यथा और यातना न होती तो बिलकुल उन्नति न होती। इसलिए वेदान्त कहता है कि यातना के इस नियम के कारण आपके पतन की कभी कोई आशंका नहीं है। हरगिज मत सोचो कि तुम कभी भी नीचे घसीटे जाओगे, अथवा कभी नीचे ढकेल दिये जाओगे!

यदि तुम किसी को अपने से बहुत ऊँचे चढ़ा हुआ देखते हो, तो उससे डाह न करो, क्योंकि तुम स्वयं एक दिन वहाँ पहुँच जाओगे। और यदि तुम किसी को अपने आपसे नीचे बहुत नीचे देखते हो, तो उसे तुच्छ मत समझो, क्योंकि एक दिन वह भी वहीं पर होगा जहाँ

ज्ञाततः अथवा अज्ञाततः, हम अधिक सावधान, अधिक चौकन्ने बनते हैं और स्वयं अपने ही स्वतंत्र मार्गों से नीची इच्छाओं को त्यागकर ऊँची इच्छाओं को ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार पीड़ा और यातना हमें पराधीन बनानेवाली नहीं, वरन् स्वाधीनता देनेवाली है।

यह एक मनुष्य है जिसमें निम्न कोटि की इच्छाओं का प्राबल्य है। अब विषय-भोग सम्बन्धी इन इच्छाओं को पूरा भी होना है और साथ ही उनका त्याग भी आवश्यक है। यह नियम है। चूँकि तुम्हारे दिव्य स्वरूप ने, सर्वेश्वर रूप ने इच्छाओं की पूर्ति की कामना की थी, इसलिए उनकी तृप्ति होनी जरूरी है, पर इन इच्छाओं की तृप्ति के दौर के साथ दर्द, रंज और यातना का आगमन भी आवश्यक होता है, जिनसे तुम अन्ततः उस दुर्बलता से मुक्त हो जाते हो। जब एक ओर वह उन वातावरण को भी पसन्द नहीं करता जो उसे रोगी बनाता है अथवा उसे परम्परागत रोग प्रदान करता है, तब दूसरी ओर अपने वातावरण के बुरे स्वरूप के प्रति उसके हृदय में घृणा जगती जाती है और फल-स्वरूप वह इधर-उधर से धक्के खाता हुआ धीरे-धीरे उससे ऊपर उठता और उन्नत होता है।

प्रश्न- निम्न इच्छाओं और रोगों की व्याख्या जो सामान्यतः वंशपरम्परागत माने जाते हैं, यदि मान भी ली जाय तो रचना जैसे रोगों का कारण समझ में नहीं आता। उसमें इच्छा की बात कहाँ से आ सकती है। वह तो हमारी तृष्णा का ही फल हो सकता है!

उत्तर—साधारणतः ऊँच और नीच, पाप और पुण्य शब्दों से सारे प्रश्नों की व्याख्या नहीं हो सकती। साधारणतः लोग जिसे अच्छा या बुरा समझते हैं, वह वेदान्त के अनुसार वैसा नहीं है।

वेदान्त के अनुसार अति अधिक भोजन या उस प्रकार का भोजन जिससे अजीर्ण सुस्ती और चिड़चिड़ापन पैदा होता है, वही सब पापों की जड़ है। बस, यही तनिक सी त्रुटि अधिकांश पापों का कारण है, अर्थात्

ज्ञाततः अथवा अज्ञाततः, हम अधिक सावधान, अधिक चौकन्ने बनते हैं और स्वयं अपने ही स्वतंत्र मर्ज़ी से नीची इच्छाओं को त्यागकर ऊँची इच्छाओं को ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार पीड़ा और यातना हमें पराधीन बनानेवाली नहीं, वरन् स्वाधीनता देनेवाली हैं।

यह एक मनुष्य है जिसमें निम्न कोटि की इच्छाओं का प्राबल्य है। अब विषय-भोग सम्बन्धी इन इच्छाओं को पूरा भी होना है और साथ ही उनका त्याग भी आवश्यक है। यह नियम है। चूँकि तुम्हारे दिव्य स्वरूप ने, सर्वेश्वर रूप ने इच्छाओं की पूर्ति की कामना की थी, इसलिए उनकी तृप्ति होनी जरूरी है, पर इन इच्छाओं की तृप्ति के दौर के साथ दर्द, रंज और यातना का आगमन भी आवश्यक होता है, जिससे तुम अन्ततः उस दुर्बलता से मुक्त हो जाते हो। जब एक ओर वह उस वातावरण को भी पसन्द नहीं करता जो उसे रोगी बनाता है अथवा उसे परम्परागत रोग प्रदान करता है, तब दूसरी ओर अपने वातावरण के बुरे स्वरूप के प्रति उसके हृदय में घृणा जमती जाती है और फल-स्वरूप वह इधर-उधर से धक्के खाता हुआ धीरे-धीरे उससे ऊपर उठता और उन्नत होता है।

प्रश्न निम्न इच्छाओं और रोगों की व्याख्या जो सामान्यतः वंशपरम्परागत माने जाते हैं, यदि मान भी ली जाय तो यक्ष्मा जैसे रोगों का कारण समझ में नहीं आता। उसमें इच्छा की बात कहाँ से आ सकती है। वह तो हमारी तृष्णा का ही फल हो सकता है!

उत्तर—साधारणतः ऊँच और नीच, पाप और पुण्य शब्दों से सारे प्रश्नों की व्याख्या नहीं हो सकती। साधारणतः लोग जिसे अच्छा या बुरा समझते हैं, वह वेदान्त के अनुसार वैसा नहीं है।

वेदान्त के अनुसार अति अधिक भोजन या उस प्रकार का भोजन जिससे अजीर्ण सुस्ती और चिड़चिड़ापन पैदा होता है, वही सब पापों की जड़ है। बस, यही तनिक सी त्रुटि अधिकांश रोगों का कारण है, अर्थात्

प्रलोभनों का सामना कर सकते हो। कभी यदि तुमको कोई रोग, कोई व्याधि घेर लेती है, तुम्हारा पेट दुरुस्त नहीं रहता है, तो ऐसी दशा में ज़रा सी भी बात तुम को क्षुब्ध, व्यग्र या अस्तव्यस्त कर सकती है, यह एक ठोस तथ्य है।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि धर्म-प्रचारक इस विषय की चर्चा करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते हैं।

अतः अपने भोजन के सम्बन्ध में सदा सावधान रहो, और तुम अपने रोग को अच्छा कर लोगे।

पेट में अधिक ठूँसना, अनुचित भोजन का व्यवहार सारे पापों की जड़ है। जिस मनुष्य में इस प्रकार की प्रवृत्ति है, वह वेदान्त की दृष्टि से उतना ही बड़ा पापी है जितना कि अन्य सात पापों में से एक या सातों पापों का करनेवाला। पेट का व्यापार ही हमें ठीक उन देहों में, उस माता-पिता के पास पहुँचा देता है, जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है, फिर कष्ट और यातना के द्वारा ही हम उस दिव्य सत्य तक पहुँच पाते हैं।

प्रश्न—अनेक बच्चों के कुटुम्ब में एक बच्चा साधु, एक पापी, एक स्वस्थ, एक बीमार इत्यादि अनेक प्रकार के बच्चे पैदा होते हैं। यह क्या बात है? वे ऐसे विभिन्न क्यों होते हैं? आप इस वैचित्र्य की व्याख्या कैसे करेंगे?

उत्तर—प्राणियों का जन्म कैसे होता है? यह तो आप समझते [illegible]। एक ही कुटुम्ब के बच्चों में इतना अन्तर कैसे होता है—इसके [illegible], देखो कि उनमें एक न एक बात सामान्य रहती है। एक मनुष्य [illegible] में काम करता है, दूसरा रोगन के कारखाने का काम करता है, तीसरा तेल की कोठी में, चौथा कपड़े के पुतलीघर में इत्यादि। ये सब लोग भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे हुए हैं, किन्तु उन सबमें एक बात सामान्य है। वे सबके सब एक ही दूकान से कपड़ा खरीदते

भावों को स्थान मत दो। उसके पास ऐसे पहुँचो, जैसे उसके गर्भ में अनन्त आत्मिक शक्ति का भाण्डार भरा हो। यह मत भूलो कि आज का महापातकी कल का परम साधु और शूरवीर नहीं बन सकता है। चरित्र साँचे में ढला हुआ नहीं होता। केवल आत्मा की अनन्त सम्भावनाओं (शक्तियों) और योग्यताओं में विश्वास करो।

जो कोई तुम्हारे पास आवे, उसे परमेश्वरवत् ग्रहण करो, पर साथ ही साथ अपने को भी तुच्छ मत समझो। आज यदि तुम कारागार में हो तो कल तुम गौरवशाली भी हो सकते हो।

पुरानी इञ्जील में, जिस 'सैमसन' की चर्चा है, जो अपने राष्ट्र के अपमान का कारण बना, वह भी अपने अतीत आचरण का निराकरण कर सकता था, क्षण-क्षण में इस पुराने अपमान के धब्बे धो सकता था। वेदान्त आपसे सच्ची आध्यात्मिकता में, "सच्ची परमेश्वरता में," "हृदयस्थ नारायण" में विश्वास करने के लिए कहता है। उसमें विश्वास करो, और बाहरी निर्णयों को कदापि स्वीकार मत करो। वे कुछ भी मूल्य नहीं रखते, क्योंकि हम उनको मिटा सकते हैं। हम उनसे ऊपर उठ सकते हैं।

जहाँ ऐसी आध्यात्मिकता है वहाँ सारी वस्तुएं हैं, और यह आध्यात्मिकता सर्वत्र आ सकती है।

संसार के मत संसार के सदाचार को समझने में गलती करते हैं। वे सम्पूर्ण पापों की जड़ तक नहीं पहुँचते। जिस मनुष्य ने आज बड़े से बड़े प्रलोभन का प्रतिरोध किया है, वही कल घातक और जाति-बहिष्कृत हो सकता है। कर्म और देह—दोनों दृष्टियों से इस रहस्य की व्याख्या हो सकती है।

स्थूल लोक में (भौतिक दृष्टि से) हमारे चरित्र के इन परिवर्तन की व्याख्या यह है कि जब तुम्हारा शरीर स्वस्थ रहता है, जब तु पेट ठीक होता है, तब तुम्हारा चरित्र भी बहुत ठीक होता है और

पुनर्जन्म के समान है। उसके सोने के क्षण से लेकर जागने के क्षण तक के बीच में जो समय बीतता है, वह उस समय के समान है जो तुम स्वर्ग, नरक, या देवलोक में बिताते हो। अब हम देखते हैं कि इस दुनिया में कुछ लोग केवल चार या पाँच घंटे सोते हैं, कुछ लोग आठ घंटे सोते हैं, और कुछ दस घंटे। बच्चे देर तक सोते हैं। बूढ़े आदमी अधिक नहीं सोते हैं। युवा मनुष्यों को सोने की अधिक जरूरत होती है। सो बहुत कुछ मनुष्यों की विशेषताओं पर, उनकी आध्यात्मिक उन्नति के स्तर पर निर्भर करता है। जिस भाँति इस दुनिया में तुम्हारे जीवन का कोई नियत समय नहीं है, कुछ लोग युवावस्था में मर जाते हैं, कुछ तीस वर्ष जीते हैं, कुछ सत्तर वर्ष, उसी तरह पुनर्जन्म के लिए कोई नियत समय नहीं है।

प्रश्न—क्या कोई मनुष्य इस युग में वेदान्त का अनुभव कर सकता है? बीसवीं शताब्दी की सभ्यता में रहता हुआ क्या कोई मनुष्य वेदान्त का अनुभव कर सकता है? यह कहा जाता है कि वेदान्त के अनुभव के लिए मनुष्य को इस तरह या उस तरह का जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे हिमालय के वनों में चला जाना चाहिए।

उत्तर—"राम" कहता है—नहीं, नहीं, तुम्हें वन में जाने की जरूरत नहीं है। लोग कहा करते हैं कि हमें समय नहीं मिलता। समय नित्य के कामों में बीत जाता है, हमें तरह तरह के [illegible] देखना पड़ता है, हमारे सम्बन्धी और मित्र हमारा बहुत सा [illegible] ले लेते हैं। एक प्रार्थना है, "हे परमेश्वर! हमें हमारे शत्रुओं से [illegible]" किन्तु आज कल के मनुष्य को यह प्रार्थना करना चाहिए [illegible] उचित ढंग यह होगा—"हे परमेश्वर! मुझे मेरे मित्रों से [illegible] दूये।" मित्र हमारा बहुत सा समय लूट लेते हैं, उसके बाद चिन्ताएँ [illegible] है।

[illegible] रूप से। आप जानते होंगे, पढ़ना या अध्ययन

पुनर्जन्म के समान है। उसके सोने के क्षण से लेकर जागने के क्षण तक के बीच में जो समय बीतता है, वह उस समय के समान है जो तुम स्वर्ग, नरक, या प्रेतलोक में बिताते हो। अब हम देखते हैं कि इस दुनिया में कुछ लोग केवल चार या पाँच घंटे सोते हैं, कुछ लोग आठ घंटे सोते हैं, और कुछ दस घंटे। बच्चे देर तक सोते हैं। बूढ़े आदमी अधिक नहीं सोते है। युवा मनुष्यों को सोने की अधिक जरूरत होती है। सो बहुत कुछ मनुष्यों की भिन्नताओं पर, उनकी आध्यात्मिक उन्नति के स्तर पर निर्भर करता है। जिस भाँति इस दुनियाँ में तुम्हारे जीवन का कोई नियत समय नहीं है, कुछ लोग युवावस्था में मर जाते हैं, कुछ तीस वर्ष जीते हैं, कुछ सत्तर वर्ष, उसी तरह पुनर्जन्म के लिए कोई नियत समय नहीं है।

प्रश्न—क्या कोई मनुष्य इस युग में वेदान्त का अनुभव कर सकता है? बीसवीं शताब्दी की सभ्यता में रहता हुआ क्या कोई मनुष्य वेदान्त का अनुभव कर सकता है? यह कहा जाता है कि वेदान्त के अनुभव के लिए मनुष्य को इस तरह या उस तरह का जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे हिमालय के वनों में चला जाना चाहिए।

उत्तर—"राम" कहता है—नहीं, नहीं, तुम्हें वन में जाने की कोई जरूरत नहीं है। लोग कहा करते हैं कि हमें समय नहीं मिलता है। हमारा समय नित्य के कामों में बीत जाता है, हमें तरह तरह के कामों को देखना पड़ता है, हमारे सम्बन्धी और मित्र हमारा बहुत सा समय ले लेते हैं। एक प्रार्थना है, "हे परमेश्वर! हमें हमारे शत्रुओं से बचाइये" किन्तु आज कल के मनुष्य को यह प्रार्थना करना चाहिए, उसका उचित ढंग यह होगा—"हे परमेश्वर! मुझे मेरे मित्रों से बचाइये।" मित्र हमारा बहुत सा समय लूट लेते हैं, उसके बाद चिन्ताओं नम्बर आता है।

एक बात उपसंहार रूप से। आप जानते होंगे, पढ़ना या अध्ययन

इसी तरह इंजील पढ़ने से जो कुछ उससे निकलता हो वह सब ईसा के उपदेशों में सम्मिलित न करो। हज़रत ईसा पूर्ण हैं, उनके उपदेश पूर्ण हैं ? किन्तु जो एक का है उसे दूसरे के मत्थे मत मढ़ो। पुस्तक को उसकी योग्यता से परखो। सर आइज़क न्यूटन की रचना 'प्रिंसिपिया' में अनेक भूलें हैं। चाहे वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य रहा हो, तथापि उसकी पुस्तकों का विवेचन उनके गुण दोषों के अनुसार ही होगा।

इसी भाँति 'राम' कहता है कि आपको 'राम' की भलाइयों और बुराइयों से कोई मतलब नहीं है। उसके आध्यात्मिक उपदेश को उसी उपदेश की भलाई-बुराई के अनुसार परखो। वेदान्त के उपदेश आप को ऊपर उठाते और उन्नत करते हैं। 'राम' यह नहीं चाहता कि आप उपदेश को यह समझ कर ग्रहण करें कि राम उन्हें देता है, वह उपदेश तो तुम्हारे लिए है, वह तुम्हारा है।

वेदान्त का अर्थ किसी की गुलामी नहीं है। बौद्धधर्म बुद्ध की गुलामी है, इस्लाम मुहम्मद की गुलामी है, पारसी मत ज़ोरोआस्टर की गुलामी है किन्तु वेदान्त किसी महात्मा की गुलामी नहीं है। वह तो सत्य है ऐसा सत्य जो हर एक व्यक्ति का है।

जब हम घाम में बैठते हैं तो हम उसके कृतज्ञ नहीं होते, क्योंकि सूर्य तो प्रत्येक मनुष्य का है। यदि 'राम' वेदान्त के घाम में बैठता है, तो तुम भी उस घाम में बैठ सकते हो, वह आपका भी उतना ही है जितना कि 'राम' का। सत्य आपका भी उतना ही है जितना भारतवर्ष का। इसे इसकी योग्यता के हिसाब से स्वीकार और ग्रहण करो। यदि वह अच्छा है तो रक्खो। यदि वह बुरा है तो उसे ठुकरा दो। जिस प्रकार इस्लाम और ईसाईमत भारत में तलवार और रुपये के बल पर लादा जाता है, उस तरह राम यह वेदान्त यहाँ नहीं

इसी तरह इंजील पढ़ने से जो कुछ उससे निकलता हो वह सब ईसा के उपदेशों में सम्मिलित न करो। इसलिए ईसा पूर्ण हैं, उनके उपदेश पूर्ण हैं ? किन्तु जो एक का है उसे दूसरे के मत्थे मत मढ़ो। पुस्तक को उसकी योग्यता से परखो। सर आइज़क न्यूटन की रचना 'प्रिंसिपिया' में अनेक भूलें हैं। चाहे वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य रहा हो, तथापि उसकी पुस्तकों का विवेचन उनके गुण दोषों के अनुसार ही होगा।

इसी भाँति 'राम' कहता है कि आपको 'राम' की भलाइयों और बुराइयों से कोई मतलब नहीं है। उसके आध्यात्मिक उपदेश को उसी उपदेश की भलाई-बुराई के अनुसार परखो। वेदान्त के उपदेश आप ही ऊपर [illegible] राम यह नहीं चाहता कि आप उपदेश को [illegible] कि राम उन्हें देता है वह उपदेश तो तुम्हारे लिए [illegible] वह तुम्हारा है

साधारण बातचीत

प्रश्न—क्या भविष्य में कोई एक ऐसा धर्म होगा, जो मनुष्यमात्र पर एक समान शासन करेगा?

उत्तर—हाँ और नहीं, दोनों। भविष्य में हमारे यहां ऐसे धर्म न होंगे जो मनुष्य-जाति पर शासन करें। भविष्य में धर्म मनुष्य पर शासन नहीं करेगा और न मनुष्य-जाति धर्मों से सम्बन्धित रहेगी, वरन् धर्म स्वयं मनुष्य से सम्बन्धित होगा।

प्रश्न—क्या केवल एक धर्म सभी मनुष्यों पर शासन करेगा?

उत्तर—नहीं, भविष्य में कोई धर्म मनुष्य पर शासन नहीं करेगा। धर्म, संस्थायें, नियम, कानून—ये सब मनुष्य से सम्बन्धित होंगे।

नियम मेरे लिए हैं। मैं नियम और संस्थाओं के लिए नहीं बनाया गया हूँ।

भविष्य में जो धर्म होगा, वह मनुष्य-जाति पर शासन नहीं करेगा, वरन् उसकी सेवा करेगा।

'एक धर्म' क्या है? इसके विषय में राम कहता है—हाँ, केवल एक ही धर्म होगा, जो मनुष्य-मात्र की सेवा करेगा, और काम आयेगा। और वह धर्म कौन सा होगा? उस धर्म के बारे में बतलाने से पहले राम कहना चाहता है कि उस धर्म का कोई नाम न होगा।

फिर वह होगा क्या? राम कहता है कि वह वेदान्त होगा, जो विज्ञान का धर्म है। वेदान्त सार्वलौकिक धर्म है।

और देखो, यदि धर्म शब्द से तुम्हारा अभिप्राय किसी मत-पथ से है, जो किसा-बद्ध है, कोई ऐसी चीज़ है जो निश्चित कर दी गई है,

[illegible]

प्रश्न—क्या कोई विवाहित पुरुष आत्मसाक्षात्कार की अभिलाषा करता है? क्या उसे आत्मानुभव हो सकता है?

उत्तर—यह सिद्ध किया जा सकता है कि वेदान्त सन्यासियों, वैरागियों की अपेक्षा विवाहित पुरुषों के अधिक अनुकूल है। यह ऐसे गृहस्थों के ही अधिक उपयुक्त है, न कि उनके जो हिमालय में रहते हैं।

प्रत्येक परिवार में पति पत्नी के आनन्द में वृद्धि करना चाहता है और पत्नी पति के आनन्द में। हर एक घोर परिश्रम भी करता है, किन्तु परिणाम क्या होता है? दोनों एक दूसरे के पतन का कारण बनते हैं। इसका दोष किसे दिया जाय? क्या उनके घोर प्रयत्नों को? नहीं? दोषी यदि कोई है तो उनका अज्ञान। वे यह नहीं जानते कि उनके साथी का सुख है किसमें? और यही अज्ञान उनके दुखों और विपत्तियों का कारण बनता है।

लोग सोचते हैं कि पति और पत्नी एक दूसरे की निम्न कामजन्य वासनाओं को जाग्रत् करके और उनकी पूर्ति करके ही एक दूसरे के आनन्द में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार जब वे एक दूसरे के अहम्-भाव की पुष्टि में सहायक बनते हैं तब उनके विचार से उनका कल्याण होता है। किन्तु कल्याण का उनका यह विचार अज्ञान जन्य है। पहले इस अज्ञान को दूर करना चाहिए और तभी प्रत्येक घर आनन्द का प्रासाद बन सकता है।

राम के अनुसार प्रत्येक पुस्तक दिव्य प्रेरणा से निर्मित होती है, प्रत्येक पुस्तक ईश्वर की पुस्तक है, न केवल बाइबिल, वरन् सभी पुस्तकें, इमरसन की पुस्तकें, डारविन और शेक्सपियर की पुस्तकें उसी की प्रेरणा के फल हैं। सभी उसके द्वारा प्रेरित होती हैं, जैसे वेद। क्योंकि कभी कोई ग्रन्थ बन ही नहीं सकता, जब तक मनुष्य अपना क्षुद्र अहम् उतार-कर फेंक नहीं देता।

प्रश्न—क्या कोई विवाहित पुरुष आत्मसाक्षात्कार की अभिलाषा करता है? क्या उसे आत्मानुभाव हो सकता है?

उत्तर—यह सिद्ध किया जा सकता है कि वेदान्त सन्यासियों, वैरागियों की अपेक्षा विवाहित पुरुषों के अधिक अनुकूल है। वह ऐसे गृहस्थों के ही अधिक उपयुक्त है, न कि उनके जो हिमालय में रहते हैं।

प्रत्येक परिवार में पति पत्नी के आनन्द में वृद्धि करना चाहता है और पत्नी पति के आनन्द में। हर एक घोर परिश्रम भी करता है, किन्तु परिणाम क्या होता है? दोनों एक दूसरे के पतन का कारण बनते हैं। इसका दोष किसे दिया जाय? क्या उनके घोर प्रयत्नों को? नहीं? दोषी यदि कोई है तो उनका अज्ञान। वे यह नहीं जानते कि उनके साथी का सुख है किसमें? और यही अज्ञान उनके दुखों और विपत्तियों का कारण बनता है।

लोग सोचते हैं कि पति और पत्नी एक दूसरे की निम्न कामजन्य वासनाओं को जाग्रत् करके और उनकी पूर्ति करके ही एक दूसरे के आनन्द में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार जब वे एक दूसरे के कलुष-भाव की पुष्टि में सहायक बनते हैं तब उनके विचार से उनका कल्याण होता है। किन्तु कल्याण का उनका यह विचार अज्ञान जन्य है। पहले इस अज्ञान को दूर करना चाहिए और तभी प्रत्येक घर आनन्द का प्रासाद बन सकता है।

अब यदि यह बात पूछो कि हमारी विपत्तियाँ और हमारी चिन्तायें किस प्रकार हमें उस दिशा की ओर ले जाती हैं तो यह तथ्य गणित की यथार्थता के साथ तुम्हारे दिल में बैठाया जा सकता है कि प्रकृति की सम्पूर्ण योजना का एकमात्र उद्देश इतना है कि तुम ऊँचे उठकर ब्रह्म-भावना में निवास करने लगो। उस आदर्श की अपूर्ति ही से हमें दुख की प्राप्ति होती है। उस आदर्श की सतह पर आ जाओ, इतना ऊपर उठ जाओ और फिर तुम्हारे लिए कोई पाप नहीं रह जाता। तुम सब बातों से ऊपर हो जाते हो। तुम पूर्ण, पूर्ण ब्रह्म हो।

साक्षात्कार एक उड़ान में प्राप्त नहीं किया जा सकता। समय की आवश्यकता होती है। इसी शरीर में आने के लिए, विकास के इस स्तर तक पहुँचने में ही हम लोगों को करोड़ों वर्ष लगे हैं।

पूर्व जन्मों में किसी समय तुम पौधे के रूप में पैदा हुए थे, किसी समय अफ्रीका के गुलामों के यहाँ तुमने जन्म लिया था और किसी समय तुम ने एक देश और जाति विशेष को गौरवान्वित किया और किसी समय किसी दूसरे देश और जाति को। इसी तरह उन जन्मों का क्रम वर्तमान समय तक चलता आया है।

मकान को नष्ट करने में भी समय लगता है। किन्तु नष्ट करने में उतना समय नहीं लगता जितना कि उसे बनाने में। यदि तुम्हारे पास यथेष्ट परिमाण में बारूद या दाहक तत्व हो, यदि तुममें यथेष्ट शक्ति हो तो तुम उसे तुरन्त गिरा सकते हो। किन्तु बहुतों के पास यही बारूद—उजलेवाली बारूद नहीं होती।

अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ रहते हुए भी यदि तुम इस दर्शन शास्त्र के पूरे-पूरे पण्डित बन जाओ, यदि तुम इसे केवल मस्तिष्क की सहायता से ही स्वायत्त कर लो, तो वेदान्त कहता है कि तुम्हारी मुक्ति के मार्ग में कोई बाधा नहीं। तुम स्वतन्त्र हो, तुम्हें फिर आवा-गमन का कष्ट न भोगना पड़ेगा। इस जीवन में प्रारब्ध के अनुसार